यज्ञ-प्रसङ्ग

ज्वालादत्त शर्मा

यज्ञप्रसङ्ग

मूल लेखक

स्व० आचार्य्य रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी

एम० ए०, पी० आर० एस०

अनुवादक

ज्वालादत्त शर्म्मा

प्रकाशक

लक्ष्मीनारायण प्रेस

मुरादाबाद ।

प्रथम संस्करण] संवत् १९७८ मूल्य ॥)

मुद्रक और प्रकाशक
कैलासचन्द्र
लक्ष्मीनारायण प्रेस,
मुरादाबाद।

भूमिका।

आचार्य्य रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी बंगाल के उन चुने हुए विद्वानों में थे जिनपर वंगभूमि ही नहीं भारतभूमि भी अभिमान कर-सकती है। उनका जीवन एक सच्चे ब्राह्मण का विद्यातपोमय जीवन था। जीवन के अन्तिम भाग में उनकी हिन्दूजाति के गौरव-स्वरूप वेदवेदाङ्ग के अध्ययन की ओर विशेष रुचि हो गई थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय की प्रार्थना पर उन्हों ने यज्ञविषय पर ४ व्याख्यान दिये थे। यज्ञ पर पूर्व और पश्चिम के पण्डितों के मतका ख़ूब मनन करके त्रिवेदी महाशयने अपने व्याख्यान में जहाँ तहाँ अनेक मौलिक तत्वों का आविष्कार किया है, किन्तु जो बात कही है बड़ी नम्रता से, राय के तौर पर नहीं-निवेदन के तौर पर-ज़ोर देकर नहीं-विनय के साथ और उसकी विशेषता को अपने वर्णनकौशल की ईश्वरदत्त शक्ति से साधारण बनाकर।

बड़े दुःखकी बात है पांचवां व्याख्यान देने से पहले ही उनकी जीवन-लीला समाप्त होगई। उस में उनके चारों व्याख्यानों का उपसंहार होता और सचमुच जो कुछ होता अपूर्व होता। इन व्याख्यानों में ही उन्हों ने जिस ढंग से जो लिखदिया है वह प्रत्येक विचारशील हिन्दू के लिए गौरव और आदर की चीज़ है।

मुझे इस बातका बड़ा दुःख है कि यह संग्रह त्रिवेदी महाशय के जीवनकाल में प्रकाशित न हो सका। उन्होंने बड़ी कृपा करके मुझे इन्हें हिन्दी में अनुवादित करने और प्रकाशित करने की आज्ञा दी थी। ईश्वर उन महापुरुष की आत्मा को परम शान्ति दें—उनका विनीत और तुच्छ भक्त अनुवादक अब उनके लिए इस से अधिक और क्या प्रार्थना कर सकता है।

दीपमालिका १९७८ } ज्वालादत्त शर्म्मा

समर्पण।

श्रीमान् बाबू ब्रजनन्दनप्रसाद एम० ए०, एल-एल० बी०,

मुरादाबाद।

महोदय,

आप मेरे शहरके नामी विद्वान् हैं, आपका चरित 'ऊँचा सोचना और सादा रहना' इस लोकोक्ति का बढ़िया नमूना है, आपका प्रान्तीय कौंसिल का काम ऐसा है जिस पर मुरादाबाद अभिमान करसकता है, आप अन्तःकरण के इशारे पर बड़ी से बड़ी चीज़ को तुच्छ समझकर छोड़ देते हैं फिर आपकी मुझ पर कृपा है, इन सब बड़े कारणों से यह छोटी सी पुस्तिका—और वह भी अनुवादित-आप को समर्पण करने की मैं धृष्टता करता हूँ, अपने उदार स्वभाव से मुझे क्षमा कर दीजिएगा।

अनुवादक।

यज्ञ-प्रसङ्ग।

वेदपन्थी समाज।

यज्ञ की कथा सुनाता हूँ, आप लोग सावधान होजायँ।

हमारी जिस समाज को आजकल हिन्दू-समाज कहते हैं उसे हम वेदपन्थी समाज कहेंगे। यह समाज वेद का शासन मानती है और अपने को उस का अनुगत समझती है। वेदपन्थी समाज के प्रधान अनुष्ठान का नाम यज्ञ है। इसी अनुष्ठान पर यह समाज प्रतिष्ठित है—ऐसा कहने में भी अत्युक्ति नहीं होगी। यज्ञानुष्ठान के तात्पर्य को बिना समझे वेदपन्थी समाज के इतिहास में जो विशेषता है वह नहीं समझी जा सकती। हम कुछ लेख लिख कर उसी तात्पर्य को समझने या समझाने की चेष्टा करते हैं।

इस वेदपन्थी समाज में कुछ संकीर्णता भी है—इस बात को हम शुरू में ही माने लेते हैं। पण्डितों का अनुमान है कि आर्य्य जाति की एक शाखा ने भारतवर्ष में प्रवेश करके एक नई समाज बनाई। उस समाज का अपना साहित्य था-वेद। उस समाज के सब काम वेद के विधिनिषेध के अनुसार ही सम्पादित होते थे। भारतवर्ष के जितने अनार्य्य अधिकारी थे वे इस समाज में शरीक न हो सके। किसी किसी ने आनुगत्य स्वीकार कर लिया। पण्डितों का अनुमान है कि वेदपन्थी आर्य्यों ने ही अपने को द्विज बनाया। जिन अनार्य्यों ने उन का आश्रय लिया था उन्हें शूद्र की कोटि में रक्खा, फल यह हुआ कि शूद्र लोग वेदपन्थी समाज के आश्रित होने पर भी इस समाज के सब अधिकारों को प्राप्त न कर सके। द्विज लोग ही असली वेदपन्थी हुए। द्विज लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों में विभक्त हुए। आचार और वृत्ति-भेद के कारण ही यह विभाग हुआ था। हम इसे एक तरह की कल्पना (Theory) ही समझते हैं। वास्तव में इन तीन वर्णों के बीच में कोई निर्दिष्ट रेखा खींच दी गई थी यह बात न मानी जाय तो भी कोई हानि नहीं। वृत्ति और आचार-भेद के जिस तरह आज कल अनेक रूप हैं उसी तरह उस समय भी हो सकते थे। तो भी सिद्धान्त की खातिर द्विजाति-समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक न एक वर्ण के घेरे में रखना ही चाहिए था। बाद को जिन धर्मशास्त्रों का प्रचार हुआ उन में इन तीन मूल वर्णों के मेल से अनेक सङ्कर जातियों की उत्पत्ति को समझाने की उत्कट चेष्टा देखी जाती

है। यह चेष्टा हमारे अनुमान का थोड़ा बहुत समर्थन करती है। कुछ हो, वेदपन्थी समाज का प्रत्येक मनुष्य अपने को द्विज कहता था और इस द्विजत्व से ही वह शूद्र और म्लेच्छ आदि अनार्य्यों से अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करता था। यह स्वातन्त्र्य ही द्विजाति समाज की संकीर्णता थी। अन्य समाज के लोग सहज में ही द्विजाति समाज में प्रवेश नहीं कर सकते, अर्थात् द्विजातियों के खास अधिकार लाभ नहीं कर सकते थे। बिलकुल ही अधिकार न पासकते हों सो बात नहीं। इतिहास से पता चलता है कि बहुत से अनार्यों ने यहां तक कि म्लेच्छों तक ने समय पाकर द्विजाति-समाज में प्रवेश लाभ कर द्विजातियों के समस्त अधिकार प्राप्त किये थे। दूसरी ओर बहुत से द्विजों ने अपनी इच्छा से द्विजातित्व के अधिकारों को छोड़कर शूद्रत्व ग्रहण किया था। आज वे लोग शूद्रत्व को ग्रहण करने के लिए अनुताप कर रहे हैं और फिर द्विजत्व की प्राप्ति के लिए व्याकुल हैं। फिर भी कहना पड़ता है कि भारतवर्ष में आज तक द्विजाति-समाज अन्यान्य समाजों से बहुत कुछ स्वतन्त्र है। वेद के अधिकार के विषय में ही यह स्वतन्त्रता है। जो व्यक्ति द्विज है, वह किसी वर्ण का क्यों न हो उसे वेद की आलोचना करने का और वेदविहित कर्म्म करने का पूरा अधिकार है। जो शूद्र हैं या द्विजत्व को छोड़ कर शूद्र होगये हैं, वेदपन्थी समाज के अन्तर्गत होने पर भी उन्हें वेद की आलोचना या वेद-विहित कर्म्म करने का अधिकार नहीं है। अब द्विज शब्द के तात्पर्य्य को समझने की चेष्टा करनी चाहिए।

आजकल विद्याप्राप्ति का नाम है लिखना पढ़ना सीखना। आजकल बहुत कुछ दावात कलम खर्च करके लिखने का अभ्यास करना पड़ता है और पुस्तकों की सहायता से पढ़ना सीखा जाता है। इस तरह लिखना पढ़ना सीख कर विद्या की प्राप्ति होती है। हम जिस समय की बात लिख रहे हैं उस समय लिखने का आविष्कार नहीं हुआ था इस लिए उस समय लिखना भी नहीं पड़ता था पढ़ना भी नहीं पड़ता था। लिखना पढ़ना न था पर विद्या थी। विद्या की प्राप्ति के लिए लिखना एकान्त आवश्यक है-हमारा विश्वविद्यालय भी यह बात-हम समझते हैं-नहीं कह सकता। विश्वविद्यालय की Faculty of Science भी नहीं कह सकती। लिखने पढ़ने के सिवा भी विद्याप्राप्ति हो सकती है। भारतवर्ष में भी एक समय विद्या थी और विद्या-प्राप्ति की व्यवस्था थी। वेदपन्थी समाज की उसी अति-प्राचीन विद्या का नाम वेद है। इतिहास की आलोचना से पता लगता है कि इसी अतिप्राचीन वेद विद्या से इस देश में अन्य विद्यायें निकलीं। द्विजाति-समाज के प्रत्येक बालक को एक समय इसी वेद विद्या का थोड़ा बहुत अंश प्राप्त करना पड़ता था। प्रत्येक बालक को इसी लिए विद्यादाता आचार्य के पास जाना पड़ता था। आचार्य के पास जाने का ही नाम था-उपनयन। यह उपनयन आजकल स्कूल में भर्ती होने के समान समझिए। आचार्य के स्थान पर कुछ वर्ष रहकर आचार्य की दी हुई वेदविद्या का अध्ययन कर और आचार्य की आज्ञा लेकर अपने घर को लौटना होता था। घर को लौटने का नाम समावर्त्तन था। आजकल 'पास' का सार्टिफिकेट लेकर घर को आने के

समान इसे समझिए। समावर्त्तनके बाद अर्थात् मास्टर महाशय के दिये हुए सार्टिफिकेट को लेने के बाद गृही होने का अधिकार होता था। इस विषय में भी हमारे धर्मशास्त्र ने एक कल्पना कर डाली है। उस समय वेदवाक्य का दूसरा नाम ब्रह्म भी था। ब्रह्म शब्द का अर्थ ही वेदवाक्य है। आचार्य के घर पर जो वेद की आलोचना करते थे वे ब्रह्मचारी कहलाते थे। ब्रह्मचारी जिन नियमों का पालन करते थे उनका नाम ब्रह्मचर्य था। जो छात्र वेदविद्या की आलोचना पर मुग्ध हो जाते थे, उसे छोड़ना नहीं चाहते थे वे गृही नहीं बनते थे। जीवन भर ब्रह्मचर्य का आचरण करते थे। कोई कोई छात्र वेद के ज्ञानकाण्ड की चर्चा पर इतने मुग्ध हो जाते थे कि गृहधर्म से उन्हें विरक्ति हो जाती थी। वे ज्ञान मार्ग पर चल कर संन्यासी हो जाते थे, प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते थे। चिरब्रह्मचारी और संन्यासियों को छोड़ कर अधिकांश छात्र समावर्तन के बाद घर आकर गृहस्थ बन जाते थे। गृहस्थों की समष्टि का नाम ही समाज है। जो व्यक्ति गृहधर्म का पालन नहीं करता, नगर से दूर रह कर विद्या या ज्ञान की चर्चा में अपना समय काटता है वह समाजका कोई नहीं है, समाज उसका पालन करती है, रक्षा करती है पर वह सामाजिक नहीं है।

समावर्त्तन के बाद विवाह का अधिकार होता है। विवाह के बिना गृहस्थ या गृहपति नहीं होता। बात यह है कि गृहिणी गृहमुच्यते। विवाह का अनुष्ठान कृत्रिम अनुष्ठान है. मालथस (Malthus) साहब के Population में छपे प्रबन्ध को पढ़ कर

अनेक आदमी विवाह संस्कार के औचित्य पर तर्क करने लगते हैं। कुछ कहते हैं कि दरिद्र को विवाह न करना चाहिए। क़ानून की मदद से उन्हें विवाह करने से रोक देना चाहिए। अभी बहुत दिन नहीं हुए पर देखते हैं कि हवा का रुख़ फिर गया है। इस युद्ध के बाद मालूम होता है कि क़ानून के ज़ोर से सब को विवाह करने के लिए मजबूर कर दिया जायगा। राष्ट्र के हित के लिए ऐसा करना अनुचित भी नहीं है। राष्ट्र के हित के लिए अनेक देशों में बालकों को ज़बरदस्ती शिक्षा दी जाती है। प्राचीन भारतवर्ष में राष्ट्रतन्त्र का इतना प्रभुत्व नहीं था तो भी समाज की भलाई का ध्यान करके ही धर्माधर्म का निरूपण किया जाता था। क़ानून के ज़ोर से किसी काम को कराना भारतवर्ष में प्रचलित न था। फिर भी भारतवर्ष की समाजव्यवस्था ने कुछ विषयों में देखा जाय तो इस तरह की बाधा का नियम लगा दिया था। जो जीवन भर ब्रह्मचारी रहना चाहते थे या ब्रह्मचर्य्य के बाद संन्यासी बन जाते थे उन का विवाह तो होता ही न था पर इस देश की समाजव्यवस्था में क़ानून की सहायता से उन्हें विवाहित करने की बात भी नहीं सोची गई थी। किन्तु जो गृहस्थ होना चाहता था वह विवाह करने के लिए एक तरह से बाध्य ही था। विवाह न करने पर उसे सामाजिकता के पूरे अधिकार नहीं मिलते थे। वेदविहित समस्त कर्मों में उसका अधिकार नहीं होता था क्यों कि वेदविहित कर्म सपत्नीक किये जाते हैं। जिसने पत्नी का ग्रहण नहीं किया है उसका मनुष्यजीवन के नियामक देवताओं के साथ कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता

है। देवता मनुष्य के दिये यज्ञभाग के लिए मुँह उठाये देखते रहते हैं। जिसके स्त्री नहीं है, वह देवताओं को यज्ञभाग नहीं दे सकता। पितरों के साथ भी उसका विशेष सम्बन्ध नहीं होता। पितर लोग भी वंशपरम्परा से मिलने वाले पिण्डों के भोजन की प्रतीक्षा करते रहते हैं। जिसके स्त्री नहीं है वह वंशवृद्धि नहीं कर सकता। पिण्ड न मिलने के भय से पितर आँसू बहाते हैं। जो व्यक्ति पितरों को पिण्ड देता है वही पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी होता है। इस लिए जो व्यक्ति वंशवृद्धि करने में असमर्थ है वह पैतृक सम्पत्ति का पूर्ण अधिकारी नहीं होता वह व्यक्ति सामाजिकता के पूर्ण अधिकार नहीं पाता। समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ उसका पूरा पूरा सम्बन्ध नहीं होता। सामाजिक जीवन को पूर्ण करने के लिए विवाह करना आवश्यक है। जीवन के संस्कार के लिए विवाह आवश्यक है। विवाह जीवन का अन्तिम संस्कार है। इसी लिए द्विजाति समाज में सामाजिक [illegible] में विवाह के लिए बाध्य है।

आचार्यकुल से वेदविद्या प्राप्त करके लौटने पर ही विवाह का अधिकार होता है—यह बात याद रखनी चाहिए। आज कल जो लड़के कोई परीक्षा 'पास' कर लेते हैं विवाह के लिए उनका 'भाव' बहुत ऊँचा हो जाता है पर उस समय ऐसा नहीं था। उस समय बिना 'पास' किये कोई विवाह कर ही नहीं सकता था। हमारे धर्मशास्त्र में पहले जिस सिद्धान्त को स्थापित किया गया था इस समय वह बहुत कुछ ढीला पड़ गया है पर आज भी ब्राह्मणों का लड़का गले में जनेऊ का सूत दिखाये बिना विवाह नहीं कर सकता। जनेऊ के सूत से

पता चलता है कि वह चाहे कितना ही मूर्ख है पर वेद का गायत्री मन्त्र कि जो वेद का सार है उसे आता है। उस समय शास्त्र का बन्धन इतना शिथिल नहीं था। वेदविद्या का कुछ अंश पढ़े बिना आचार्य्य समावर्त्तन की आज्ञा नहीं देता था और बिना समावर्त्तन के विवाह नहीं हो सकता था। इस लिए जो मूर्ख होते थे उन का विवाह न होता था, गृही न होने के कारण वे समाज से प्रायः अलग ही रहते थे। सिद्धान्त के हिसाब से यह परिणाम निकलता है कि द्विजाति-समाज में मूर्ख का कोई स्थान न था। प्रत्येक द्विज के लिए विद्या लाभ करना इस तरह एकान्त आवश्यक (Compulsory था। क्यों कि मूर्ख का विवाह निषिद्ध है। इस समय सब को ज़बर्दस्ती शिक्षा देने का प्रस्ताव किया जाता है किन्तु शिक्षा किस तरह Compulsory होगी उस का कोई उपाय नहीं किया जाता। हां राष्ट्र शक्ति से इस के लिए प्रार्थना की जाती है। उस समय शास्त्रकारों की व्यवस्था से विद्यालाभ एकान्त आवश्यक (Compulsory) किया गया था, वेदविद्या के लाभ से अर्थात् उस समय की उच्चतम विद्या की प्राप्ति से 'बाध्यता' की प्रतिष्ठा की गई थी। विवाह के बंधन से आज कल के विश्वविद्यालय आज कल की उच्च शिक्षा की प्राप्ति में उस तरह की बाध्यता स्थापित कर सकते हैं या नहीं इस की विवेचना विश्वविद्यालयों के वाइस चांसलर महोदय कर देखें।

भारतवर्ष की जो सब से पुरानी समाज थी, सिद्धान्त के हिसाब से जिस में अशिक्षित व्यक्ति का स्थान नहीं था, जिस समाज में अशिक्षित व्यक्ति गृही या गृहपति नहीं हो सकता

था गृहस्थ के अधिकार प्राप्त न कर सकता था, धर्म्म कर्म्म में अधिकार नहीं पाता था, समाज में पतित की तरह रहता था वही समाज द्विजाति-समाज थी, उस समाज का प्रत्येक व्यक्ति द्विज कहलाता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों में से किसी वर्ण का हो या किसी मिश्र वर्ण का हो—द्विज कहलाता था। जिस ने एक बार प्राकृतिक नियमों के वशीभूत होकर मनुष्य शरीर लाभ किया है और दूसरी बार वेद-विद्या के लाभ से संस्कृत और पूत होकर दूसरा जन्म पाया है, नूतन सामाजिक जन्म पाया है, वही व्यक्ति द्विज है। जो ब्राह्मण दूसरों के बालकों को पढ़ाता है, दूसरों को धर्म्म कर्म्म कराता है—वह द्विज है जो क्षत्रिय राजकाज करता है या युद्ध करता है वह द्विज है। जो वैश्य गोपालन करता है या खेती करता है या दूकान करता है वह भी द्विज है। समस्त वेद-विद्या में, वेद के संकलन और कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में इन सब का सोलह आने अधिकार है उस अधिकार से उन्हें कोई वञ्चित नहीं कर सकता। समाज और लोकस्थिति के लिए उन्हें कुछ सामाजिक नियम मानने पड़ते हैं। कुछ कृत्रिम अनुष्ठान भी उन्हें करने पड़ते हैं। इन कृत्रिम अनुष्ठानों का साधारण नाम यज्ञ है। यज्ञ का तात्पर्य समझे बिना वेदपन्थी द्विजाति-समाज का निगूढ़ तत्व भी नहीं समझा जासकता वेदपन्थी समाज के कर्म्म और ज्ञान का इतिहास भी नहीं समझा जा-सकता। भारतवर्ष के इतिहास में जो विशेषता है वह भी नहीं समझी जासकती. इसी लिए मैंने निवेदन किया कि आप सावधान हो जायँ मैं यज्ञ की कथा सुनाता हूँ।

यह बात हमें याद रखनी चाहिए कि सब समय और सब देशों में मनुष्य-समाज एक बनाया हुआ अर्थात् कृत्रिम यन्त्र है सभी जगह कुछ कृत्रिम अनुष्ठानों के अवलम्ब से समाज को बांधने की चेष्टा होती रही है। समाज-यन्त्र कहीं अधिक जटिल है और कहीं कम। उसी के अनुसार कहीं तो यज्ञादि कृत्रिम अनुष्ठानों की बहुलता है और कहीं अल्पता। बहुत से मौक़ों पर इन अनुष्ठानों का तात्पर्य समझ नहीं पड़ता। सम्भव है किसी समय उन में कुछ तात्पर्य रहा हो पर अब बहुत सोचने पर भी उस का पता नहीं चलता पण्डित लोग वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा इन अनुष्ठानों का तात्पर्य समझने की चेष्टा करते हैं। आजकल मानवविद्या Anthropology जो विज्ञान के दर्जे पर पहुँच गई है उस में तत्त्व के जानने वाले पण्डित वैज्ञानिक रीति से मानव समाज के प्रत्येक अनुष्ठान के तात्पर्य को समझने की चेष्टा करते हैं। इस के मुख्यतः दो पथ हैं। पहला—तुलनात्मक आलोचना। भिन्न भिन्न देशों की भिन्न भिन्न समाजों में जितने अनुष्ठान आजकल प्रचलित हैं उन सब की आपस में तुलना करके आलोचना करनी होती है। उन में कहां सादृश्य है, कहां वैषम्य है, कितना सादृश्य है, कितना वैषम्य है इन सब बातों की आलोचना करनी होती है। इस तरह की आलोचना से अनेक अनुष्ठानों का तत्त्व समझ में आ जाता है। दूसरा पथ—ऐतिहासिक आलोचना। किसी एक समाज में अति प्राचीन काल में किस तरह के अनुष्ठान प्रचलित थे—उस देश का पुराना इतिहास होने पर, पुराना साहित्य होने पर-

उन में इस बात का पता लग जाता है। जिस देश का सिलसिलेवार—धारावाहिक—साहित्य या इतिहास है उस देश के पुराने अनुष्ठान में किस तरह विकृति या परिणति हुई यह जान लेने पर अनुष्ठानों का तात्पर्य्य समझ में आजाता है। उस समय मालूम पड़ता है कि वर्त्तमान काल में जिन अनुष्ठानों का कुछ अर्थ नहीं है एक समय उन का अर्थ था। जो इस समय उद्देशविहीन मालूम होते हैं किसी समय उन का कुछ उद्देश अर्थ-था। एक प्रचलित दृष्टान्त सुनिए। आप को मालूम होगा, अंगरेज़ बड़े दिन पर Mistletoe नाम की लता से अपने घर सजाते हैं और किसी लता से नहीं। मिसिलटो से ही क्यों मकान सजाते हैं इस का अर्थ इस समय कुछ नहीं मालूम होता किन्तु अतीत इतिहास से इस का तात्पर्य्य मिलता है। अंगरेज़ों के देश में जिस समय अंगरेज़ों का आविर्भाव नहीं हुआ था उस समय ब्रिटन लोग ओक वृक्ष की पूजा किया करते थे। मिसिलटो लता ओक वृक्ष पर ही पैदा होती है। उस समय के ब्रिटन इस लता में अलौकिक शक्ति मानते थे। बड़े दिन पर उत्तरायण सूर्य्य होते ही डुइड लोग नव वर्ष के उत्सव में इकट्ठे हो कर इस लता को ओक वृक्ष पर से काट लाते थे और उसे टुकड़े कर के यजमानों में बाँट देते थे। मिसिलटो को घर में रखने से लक्ष्मी का वास स्थिर होता था। मिसिलटो व्याधिनाशक है, इस लिए यत्नपूर्वक वह घर में रक्खी जाती थी। अब न वे डुइड हैं, न वे ब्रिटन हैं, और न वह मिसिलटो के माहात्म्य में विश्वास है। किन्तु ब्रिटन देश पर जिन्होंने क़ब्ज़ा किया है, पुराने धर्म्म को छोड़ कर जो ईसाई होगये हैं

वे विजेता अंगरेज़ बड़े दिन के उत्सव पर पराजित जितों की उस प्रथा को अभी तक नहीं छोड़ सके हैं। इस समय यह अनुष्ठान तात्पर्य्यहीन है। किन्तु एक समय इस में तात्पर्य था। इतिहास की आलोचना करने से उस का आविष्कार होता है। बड़े दिन के उत्सव को ही लीजिए। तुलनामूलक आलोचना से पता चलता है कि यह उत्सव सभी जातियों में किसी न किसी आकार में मौजूद है। सूर्य्य दक्षिण को चलते चलते एक दिन उत्तर की ओर मुँह फेरता है; अति असभ्य जातियां भी इस बात को जानती हैं। यह दिन शीत ऋतु के अवसान की सूचना देता है, पृथ्वी अपनी मूर्ति बदलने का उद्योग करती है। यह दिन सभी के लिए आनन्द और उत्सव का दिन है। हम लोग भी उत्तरायण संक्रान्ति—मकर—पर अनेक पुण्य कर्म करते हैं। पौष मास पुराणों में पौष मास में अनेक उत्सव होते हैं। ईसामसीह ने किसी तिथि पर जन्म लिया है इसे कोई ईसाई नहीं जानता। किन्तु ईसामसीह ने नया धर्म्म चलाया था, मानवजाति के इतिहास का एक नया परिच्छेद खोला था। ईसाइयों ने कल्पना कर ली कि जिस बड़े दिन पर समस्त पृथ्वी नये जीवन के लिए उद्योग कर रही है उसी दिन ईसा का जन्म हुआ था। ईसा के आविर्भाव से पहले बड़े दिन पर जो उत्सव और अनुष्ठान होते थे वे ही घटा बढ़ा कर ईसा के जन्मोत्सव में परिणत किये गये। उनका तात्पर्य्य पहले कुछ और था पर बाद को उन में उन से भिन्न तात्पर्य्य की योजना की गई।

इस दृष्टान्त से ही वैज्ञानिक रीति का परिचय पाया जा

सकता है। इस में संदेह नहीं कि इस समय Anthro Pology विद्याका आसन बहुत ऊँचा है। किन्तु उस में जितनी उछल कूद मचाई है उतना काम नहीं निकाला है। अभी तक उस में पद पद पर मतद्वैध और संशय हैं। एक पण्डित का मत दूसरे पण्डित से नहीं मिलता, किसी सिद्धांत को सर्वसम्मत नहीं कह सकते। पर, इस में दुःख करने की ज़रूरत नहीं। इस समय यह विद्या विज्ञान-विद्या है। विज्ञान विद्या का यह गुण भी है और दोष भी। किसी सिद्धान्त को एक साथ पक्का कर देना विज्ञान-विद्या को पसंद नहीं है। ज्ञान के विस्तार के साथ प्रत्येक सिद्धान्त को पूर्णतया परिणति की ओर ले जाना ही विज्ञान का काम है। विज्ञान-विद्या जिस मार्ग पर चलती है उसी पर उसे चलना होगा। विज्ञान-विद्या के पक्ष में कहना चाहिए—नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय वह मार्ग संशय और द्विविधा का है पर क्या किया जाय वही एक मार्ग है।

किसी कट्टर ईसाई से कहा जाय कि तुम्हारे बड़े दिन के उत्सव के साथ ईसामसीह के जन्म का कुछ सम्बन्ध नहीं है, वह सिर्फ़ ईसाइयों का ही उत्सव नहीं है, सर्वसाधारण का उत्सव है, तो वह नाराज़ हो जायगा। उस ने जन्म भर यही विश्वास रक्खा है कि उस दिन ईसा का जन्म हुआ है और इसीलिए यह उत्सव [illegible] से मनाया आया है। उस विश्वास की जड़ [illegible] उसकी धर्मगांठ भी शिथिल हो जायगी। [illegible] प्रमाण देने पर भी वह उस विश्वास को दूर न करेगा। [illegible] मनुष्य के conduct — कर्म—के ऊपर प्रमाण [illegible] —का असर बहुत ही कम है मनुष्य

जीवन के बनाने वाले वास्तव में संस्कार और विश्वास ही हैं। प्रज्ञा भूलें दिखा कर उसे अपने शासन में लाना ज़रूर चाहती है, उसे संयत करना ज़रूर चाहती है किन्तु पूरी तरह सफल नहीं होती। कर्म के मार्ग में चलते हुए वह प्रज्ञा की बात मानने के लिए तयार नहीं होता। उस की अन्तरात्मा इस विषय में द्रोही हो जाती है। विज्ञान-विद्या के साथ Religion का जो विरोध है वह कभी मिटने वाला नहीं। उस की जड़ यही है। सामाजिक मनुष्य के कर्मों का तात्पर्य्य समझने में इस बात पर ध्यान रखना होगा। इस पर ध्यान दिये बिना काम न चलेगा। विज्ञान-विद्या कुछ कहे पर मनुष्य संस्कार और विश्वास को अपने धातु के साथ, अपनी प्रकृति के साथ दूध बूर की तरह मिला लेता है और तदनुसार काम करता है। बहुत से सामाजिक अनुष्ठानों का अभिप्राय मालूम भी नहीं। अवैज्ञानिक मनुष्य उसे जानने के लिए व्यग्र भी नहीं। वह प्रत्येक अनुष्ठान में अपना मनगढ़न्त तात्पर्य्य आरोपित कर लेता है। जो स्वयं कल्पना नहीं कर सकता वह दूसरों के बताये अर्थों को ग्रहण करके तात्पर्य्य-रचना कर लेता है। जिन में कल्पना की मात्रा अधिक है वे उन अनुष्ठानों में एक नहीं अनेक तात्पर्य्यों का आरोप कर लेते हैं और अन्य लोग उन तात्पर्यों को निर्भ्रान्त मान लेते हैं।

आर्य्य जाति की जिस शाखा ने भारतवर्ष में आकर वेद-पन्थी समाज को स्थापित किया उस का प्रधान अनुष्ठान यज्ञ था। इस की जड़ का पता लगाने के लिए और भी पुराने काल तक जाना पड़ेगा। भारतीय और पारसियों के धर्मग्रन्थों की

तुलनामूलक आलोचना से उस का पता मिलेगा। आर्येतर जातियों में भी किसी न किसी रूप में यज्ञानुष्ठान मौजूद था और अब भी है—यह बात आप लोग जानते ही हैं। यह तो आपकी जानी हुई बात है, इस के विषय में कुछ लिखकर हम आप का समय नष्ट करना नहीं चाहते।

भारतवर्ष में समय पाकर वेदपन्थी समाज में यज्ञानुष्ठान खूब प्रचलित हुआ और साथ ही जटिल भी। बहुत से अनुष्ठानों का असली तात्पर्य मनुष्य भूल जाते हैं। किन्तु तात्पर्य बना लेने का उन्हें खूब अभ्यास होता है। कल्पना शक्ति में तो भारतवर्ष के मनुष्यों ने कभी किसी देश से हार नहीं मानी है। आप ने वेद के ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम सुना होगा। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ का विवरण ही भरा हुआ है। किस यज्ञ में क्या क्या होता है—यह सब ब्राह्मण ग्रंथों से मालूम होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों का जिन्हों ने प्रचार किया था उन का नाम ब्रह्मवादी था। उनकी कल्पना की दौड़ असीम थी। किसी जगह भी उन का पाँव पीछे न पड़ता था ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययन से आप को मालूम होगा कि वे अनुष्ठानों के विवरण देने में कैसे पटु हैं। एक के बाद दूसरा विवरण चला जाता है। किस अनुष्ठान का क्या तात्पर्य है, क्या अर्थ है यह भी साथ साथ बिना किसी संकोच के बताते जाते हैं। उन्होंने अपने मत का बड़ी सरलता से प्रकाश किया है वे कहे जाते हैं, उन के मुँह से जो वाक्य निकलते हैं मानों उन के लिए वे उत्तरदाता नहीं हैं। उन के पक्षमें कोई युक्ति या तर्क है या नहीं, वह विचार-युक्त है या नहीं—इस बात को सोचने की मानो उन्हें फ़ुरसत

वर्ण-प्रबंध ।

नहीं मानो उनके भीतर बैठा हुआ कोई उन से वे बातें कहता रहा है और वे कहे जाते हैं । कहीं कहीं तो ब्रह्मवादियों ने एक ही बात के दो तात्पर्य्य समझाये हैं। एक के मत को दूसरा ब्रह्मवादी काटता है। ऐसा करने में उन्हें कुछ भी संकोच नहीं। दोनों पक्षवाले अपनी अपनी बात उसी ज़ोर के साथ कहते हैं। दोनों के वाक्य ही वेद वाक्य हैं।

वेद किसे कहते हैं यह बात यदि आप हम से पूछने लगें तो हम उस का उत्तर न दे सकेंगे। हम ही नहीं हमारे शास्त्रकार भी इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकते हैं। उन्हों ने सिर्फ़ इतना ही कहा है कि वेद के दो भाग हैं मन्त्र और ब्राह्मण। मंत्र और ब्राह्मण इन दोनों का नाम ही वेद है समाज में रहने वालों के लिए मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही तुल्य-मूल्य हैं, दोनों ही वेद वाक्य हैं, दोनों ही नित्य और अपौरुषेय हैं किसी व्यक्तिविशेष के गढ़े हुए वाक्य नहीं हैं. खास आदमियों ने उन का प्रचार ज़रूर किया है जिन्होंने मंत्र और ब्राह्मण का प्रचार किया है उन का नाम ऋषि है। वेद के मंत्रों को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है-ऋक यजुः और साम ऋक मंत्र छंदोबद्ध वाक्य हैं आज कल के पद्य या अँगरेज़ी के V[illegible] समझ लीजिए। यजुर्मन्त्र छंदोबद्ध नहीं हैं उन्हें गद्य मंत्र समझिए या अँगरेज़ी में Prose [illegible]। साम मंत्र कोई पृथक् मंत्र नहीं हैं। ऋक् मंत्र को किसी खास स्वर के साथ गाया जाता था वह साम मंत्र हो जायगा कोई गद्य छंदोबद्ध [illegible] में पढ़ो [illegible] ऋक् हो जाता है और स्वामी[illegible] [illegible] लोगों ने निगद और प्रेष मंत्रों का भी उल्लेख किया है [illegible] वे सब भी गद्यमय

वाक्य हैं। उन्हें भी यजुर्मन्त्र का प्रकार भेद समझ लीजिए। बस ऋक्, यजुः, साम-मंत्रोंकी यही तीन श्रेणियां हैं। मंत्रों की कोई चौथी श्रेणी नहीं है। इसी लिए मन्त्रात्मक वेद विद्या को त्रयी विद्या कहते हैं। वेद तीन नहीं चार हैं इस तरह का भी एक भ्रम फैला है। आप लोगों ने ऋक्, यजुः साम और अथर्व-इन चार वेदों की बात सुनी होगी। इस समय के अनेक पण्डितों का मत है कि ऋक्, यजुः, साम-ये तीन वेद ही प्राचीन वेद हैं, अथर्व से, जबर्दस्ती [illegible] वेद चार को बनाया गया है। इस [illegible] के उत्तर की हम [illegible] नहीं [illegible]। बात यह है कि मंत्रों की तीन श्रेणियां हैं। किन्तु वेद-मंत्रों की संहितायें चार हैं। मंत्रों के संग्रह का नाम संहिता है। बहुत से ऋक् मंत्रों को एक जगह इकट्ठा करके जो पुस्तक बनी वह ऋक् संहिता कहलाई। इसी तरह यज्ञ में काम देने वाले मंत्रों के संग्रह से यजुःसंहिता बनी। जिन मंत्रों को यज्ञ में गाया जाता है उनको एक जगह इकट्ठा करके साम संहिता बनी। इन संकलित मंत्रों को छोड़कर और भी कुछ मंत्र थे जो साधारण यज्ञ में काम न आते थे वे शांति स्वस्त्ययन में काम आते थे उनको इकट्ठा करके अथर्व संहिता बनाई गई। अथर्व-संहिता के अधिक मंत्र ऋक् हैं। ऋक्, यजुः और साम इन तीन श्रेणियों के सिवा और कोई चौथी श्रेणी मंत्रों की नहीं है। मंत्रों की श्रेणियां तो तीन ही हैं पर उनका संग्रह Collection चार जिल्दों में हुआ है। प्रत्येक मंत्र किसी न किसी समय किसी न किसी व्यक्ति द्वारा प्रचारित हुआ है। 'प्रचारित' इस लिए कहा कि किसी ने वेदों की रचना की है यह बात वेदपन्थी किसी तरह कहना नहीं चाहते।

जिस ने जिस मंत्र का प्रचार किया वही उस मंत्र का ऋषि हुआ। जिस मंत्र में जिस देवता को लक्ष्य किया गया है वह उस मंत्र का देवता है। इस के सिवा प्रत्येक मंत्र का किसी न किसी कर्म्म में, किसी न किसी अनुष्ठान में विनियोग होता है। याज्ञिकों के मत में प्रत्येक मन्त्र किसी न किसी काम में आता है, किसी न किसी अनुष्ठान में प्रयुक्त होता है। बेकार मंत्र कोई नहीं है। इस लिए अकेली मंत्रों की संहिता से समाज का विशेष लाभ नहीं होता। सामाजिक मनुष्यों को वेद-मन्त्रों की सार्थकता दिखानी होती है। इसी लिए ब्राह्मण ग्रन्थों की आवश्यकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में दिखाया गया है कि कौन मन्त्र किस कर्म में प्रयुक्त होता है कब किस तरह प्रयुक्त होता है, उस कर्म में उस मन्त्र की क्या सार्थकता है अन्य मंत्रों का प्रयोग न करके उस का क्यों प्रयोग किया गया--इन सब बातों का विस्तृत विवरण ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। जिन ब्रह्मवादियों ने इन ब्राह्मण ग्रंथों को चलाया है वे सब भी ऋषि ही हैं। उन्हों ने भी मानो किसी की प्रेरणा से मंत्रों के विनियोग और मन्त्रों के तात्पर्य जान [illegible] और जो कुछ जाना है उस समाज के कल्याण के लिए प्रकाशित कर दिया है। यह भीतरी प्रेरणा थी। [illegible] नहीं होती। इसलिए मंत्र जिस तरह वेदवाक्य हैं, मंत्रों के सम्बंध में जो ब्राह्मण प्रचारित हुए हैं वे भी वेदवाक्य हैं। अतएव मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं।

मतलब यह कि हमारे वेदपन्थी समाज की भित्ति इन ब्राह्मण ग्रंथों पर ही प्रतिष्ठित है। समस्त वेदपन्थी समाज ने

ब्राह्मणों को वेदवाक्य मान लिया है और उन्हीं के अनुसार समाज की व्यवस्था की है। ब्राह्मण ग्रंथों में जो विधि-निषेध लिखे हैं वेही वेदपन्थी समाज के धर्मशास्त्र की जड़ हैं। यहां तक साफ़ साफ़ कह दिया है कि ब्राह्मणग्रन्थों के वाक्य भी स्वतः प्रमाण हैं उन्हें मानना ही पड़ेगा। प्रचलित धर्मशास्त्र के किसी वाक्य के साथ यदि उस वेदवाक्य का विरोध हो तो धर्मशास्त्र की बात न मानी जायगी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भिन्न भिन्न ब्राह्मणग्रन्थों के प्रचारकों में भी बड़ा मतभेद था। एक ही अनुष्ठान के तात्पर्य के विषय में मतभेद था। अनुष्ठान में भी विधि-निषेध के सम्बन्ध में भिन्नता थी। पर उक्ति सब की वेदवाक्य ही है। उन वेद-वाक्यों के सामञ्जस्य के लिए दार्शनिक पण्डितों को सिर खपाना पड़ा। परस्पर विरोधी विधि-निषेध-वाक्यों का साम-ञ्जस्य न करने पर सामाजिक लाभ किस [illegible]— इस सामञ्जस्य के लिए, वेदवचनों का तात्पर्य [illegible] के लिए, कर्म की मीमांसा [illegible] दर्शन [illegible] शास्त्र की सृष्टि की [illegible] मीमांसा [illegible] है। परस्पर विरोधी [illegible] सामञ्जस्य [illegible] दर्शन [illegible] पंथी समाज ने उन्हें [illegible]। [illegible] प्रचलित [illegible] जहां [illegible] सामाजिक अनुष्ठान के कर्तव्य में संशय [illegible] पर मीमांसा दर्शन की दुहाई दीजाती है और मीमांसा दर्शन के सूत्रों का प्रयोग करके कर्तव्य का निर्णय किया जाता

है। सब देशों में, सब समाजों में कुछ कृत्रिम Convention के ऊपर ही लोकस्थिति की स्थापना हुई है। सामाजिक अनुष्ठानों की विज्ञानसम्मत भित्ति चाहे कुछ ही हो उन की ऐतिहासिक भित्ति वास्तव में कुछ Convention के ऊपर—कुछ Fiction के ऊपर ही होती है। समाज के अधिकांश लोग जो मान लेते हैं वह विज्ञानसम्मत हो या न हो वही समाज-व्यवहार की भित्ति होती है। क़ानून जानने वाले या व्यवहार शास्त्री इन सब Fictions को ख़ूब जानते हैं। इस विषय में हमारे विशेष लिखने की ज़रूरत नहीं।

अच्छा अब फिर यज्ञ की कथा शुरू होती है। 'यज्ञ' शब्द कभी तो बहुत ही संकीर्ण और कभी बहुत व्यापक अर्थ में व्यवहार होता है। याज्ञिक पण्डितों ने यज्ञ शब्द का एक अर्थ किया है। देवता के उद्देश से द्रव्य के त्याग को यज्ञ कहते हैं। इस वाक्य में तीन शब्द प्रधान हैं। देवता, द्रव्य और त्याग। इन तीन शब्दों के भी संकीर्ण पारिभाषिक अर्थ हैं और अत्यन्त व्यापक अर्थ भी हैं। हमें यज्ञ का तात्पर्य्य मालूम करना है। संकीर्ण और व्यापक दोनों तरह के अर्थ हमें ग्रहण करने होंगे। पहले संकीर्ण अर्थ को ही लेते हैं फिर क्रमपूर्वक व्यापक अर्थ तक आयेंगे। संकीर्ण अर्थ में देवता, द्रव्य और त्याग से क्या समझा जाता है, यह तो आप जानते ही हैं। वेद में अनेक देवताओं का उल्लेख है इन्द्र, अग्नि, सोम, विष्णु, रुद्र आदि। इन सब देवताओं के लिए कोई न कोई द्रव्य त्याग किया जाता है।

त्याग कर्म का नाम आहुति है। जो कुछ त्याग किया

जाता है उसे हव्य कहते हैं । अनेक द्रव्य हव्यरूप से दिये जाते हैं । इनमें से [illegible] आज्य अर्थात यज्ञ के लिए संस्कार किया हुआ घी, चरु या खीर, दुग्ध, दही, पुरोडाश या रोटी, [illegible] [illegible] आदि आदि द्रव्य-याग के कर्म [illegible] [illegible] हैं । जिस गृहस्थ के हित के लिए याग का अनुष्ठान किया जाता है उसे यजमान कहते हैं । और यजमान के हित के लिए [illegible] कर्म का सम्पादन करते हैं वे याजक या ऋत्विक् कहलाते हैं । याग कर्म का प्रायः प्रत्येक अनुष्ठान [illegible] [illegible] किया जाता है । प्रत्येक कर्म के [illegible] [illegible] कि कर्म में प्रयुक्त [illegible] [illegible] [illegible] किसी काम में नहीं आ[illegible] यह निश्चित है मन्त्रों की तीन श्रेणियाँ हैं—ऋक्, यजु, और साम [illegible] इन तीनों श्रेणियों के मंत्रों का [illegible] था वहाँ एक [illegible] से काम नहीं चलता था । [illegible] अधिक याजकों की [illegible] [illegible] [illegible] ऋत्विक् [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] ऋक् [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] याजकों की आवश्यकता होती थी अर्थात ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम वेदी की । ऋग्वेदी याजक को होता कहते थे । वे ऋक् पढ़ा करते थे । होता से आप हवन करने वाले का अर्थ न समझिए, होता शब्द आह्वान अर्थ वाली ह्वे धातु से बना है । जो ऋक् मन्त्रों के उच्चारण से देवताओं को यज्ञ स्थल में बुलाते थे वे होता कहाते थे । होता को आहुति देनी न पड़ती

थी । जो अग्नि में आहुति देता था वह अध्वर्य्यु कहाता था । वही अग्नि में हव्य द्रव्य छोड़ता था और उसे ही वह हव्य द्रव्य तय्यार करना पड़ता था । इन सब कामों को करते समय उसे यजुर्मन्त्र पढ़ने पड़ते थे । इस लिए अध्वर्य्यु को यजुर्वेदी होना ज़रूरी था । बड़े बड़े यज्ञों में आह्वानकर्त्ता होता और आहुतिदाता अध्वर्य्यु के अन्यान्य सहकारी भी होते थे । साम गान करने वाले प्रधान ऋत्विक् का नाम उद्‌गाता है । यज्ञविशेष में उद्‌गाता के सहकारी भी होते हैं । ऋग्वेदी यजुर्वेदी और सामवेदी इन तीनों श्रेणियों के ऋत्विकों के काम को देखने के लिए; उन की भूल चूक सुधारने के लिए और एक प्रधान ऋत्विक् हुआ करते थे । उन का नाम ब्रह्मा था । एक हिसाब से वे सब में श्रेष्ठ होते थे । वे सब के कामों की देखभाल करते थे । अतएव तीनों वेदों में उन को अभिज्ञता होनी ज़रूरी थी । वे त्रिवेदज्ञ होते थे । ब्रह्मानाम से ही उनकी श्रेष्ठता सूचित होती है । क्योंकि उस समय वेद वाक्य को ब्रह्म ही कहते थे । ब्रह्म वाक्य के तात्पर्य्य का जिस में व्याख्यान था, वेद के उस अंश को ब्राह्मण कहते हैं । जो ब्रह्म वाक्य के तात्पर्य्य को समझते थे वे ब्रह्मनाम होते थे । वेदपन्थी समाज में जिस वर्ण के मनुष्य पर इन ब्रह्म वाक्यों की रक्षा का भार अर्पित हुआ था उस वर्ण का नाम भी ब्राह्मण था । अतएव ऋत्विकों में जो त्रिवेदज्ञ और श्रेष्ठ होते थे वे ही ब्रह्मा होते थे । किसी किसी यज्ञ में ब्रह्मा के सहकारी भी होते थे ।

यज्ञमात्र ही कर्म्म है, प्रत्येक कर्म्म का कुछ न कुछ फल

होना चाहिए। वह फल इस लोक में भी पाया जा सकता है और परलोक में भी। किस कर्म्म का क्या फल होता है—न युक्ति द्वारा और न विचार द्वारा ही वह पाया जासकता है। किस कर्म्म का कौन फल होता है-इस का पता ब्रह्मवादी ऋषियों ने अपनी खास प्रेरणा शक्ति Inspiration से लगा लिया था। यजमान के हित के लिए यज्ञ कर्म्म होता था। यजमान पत्नीसहित यज्ञ का अनुष्ठान करता था। दोनों को बराबर फल मिलता था। यजमान-पत्नी यज्ञस्थान में उपस्थित रहती थी किन्तु उसे वेद के किसी मन्त्र का उच्चारण करना न पड़ता था वेद मन्त्रों का ठीक ठीक अभ्यास करने के लिए आचार्य के घर जाकर बरसों रहना होता था। स्त्रियों के लिए आचार्य के घर पर रहने की वैसी सुविधा या सम्भावना न होने से स्त्री जाति वेद पढ़ने के अधिकार से धीरे धीरे वञ्चित होगई अतिप्राचीन काल में तो स्त्रियों ने वेद का प्रचार तक किया है। स्त्रियों में भी ऋषि थी—ब्रह्मवादिनी थीं। यहां तक कि आचार्यगृह में उपनीत होकर वेद के कर्म्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड की आलोचना किया करती थीं। इस तरह के दृष्टान्त कुछ कम नहीं हैं किन्तु इस समय जब कि L[illegible] में बिना वास किये विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता, उसी तरह बिना उपनयन के अर्थात् बिना आचार्य्य के घर पर वास किये वेद-विद्या लाभ का सुयोग नहीं मिलता था। इसी लिए स्त्रियों के वेदाभ्यास का सुयोग और वेद के उच्चारण का अधिकार क्रमशः जाता रहा। वेदमन्त्रों का उच्चारण करना

सहज बात नहीं है। ठीक उच्चारण सिखाने के लिए 'शिक्षा' नाम से एक वेद-विद्या का ही प्रादुर्भाव हुआ था। और उस समय जब कि वेद की भाषा अप्रचलित होगई तब आचार्य के बिना सिखाये वेदमन्त्रों का ठीक ठीक उच्चारण करना असम्भव होगया। ठीक तौर पर उच्चारण किये बिना मन्त्रों का फल नहीं मिलता यही नहीं, उलटा फल मिलने की आशङ्का रहती है। इन्द्रशत्रु शब्द के उच्चारणदोष से कैसा उलटा फल हुआ था वह कथा आपने सुनी ही होगी। यज्ञ यजमानपत्नी के वेदमन्त्र उच्चारण न करने पर भी वैदिक क्रियाकर्मों में उस का पूरा अधिकार था, यहां तक कि स्त्री के न होने पर यज्ञ होता ही न था। [illegible] कुछ अनुष्ठान भी करती थीं। यजमानपत्नी का [illegible] भी समान [illegible] था।

कुछ यज्ञ तो नित्य हैं और कुछ काम्य हैं। [illegible] जो किसी विशेष फल की इच्छा करते हैं वे मनुष्य काम्य कर्म करते हैं, न करें तो कुछ हानि नहीं, किन्तु नित्यकर्म अवश्य कर्तव्य हैं, उनके न करने पर दोष लगता है। [illegible] भी उन नित्य कर्मों के न करने के लिए किसी तरह के राजदण्ड की व्यवस्था न थी। समाज में निन्दा होनी तो होती ही, समाज में वह पतित होता था या नहीं यह मालूम नहीं। इस देश की समाज [illegible] जबरदस्ती किसी से कोई काम न कराती थी। "नित्यकर्म न करने से जो पाप होता है जो नित्य कर्म नहीं करेगा उसे भोगेगा।" दूसरे का उस से क्या सम्बन्ध है?

उपनयन के बाद ब्रह्मचारी आचार्य के स्थान पर वास करना था। आचार्य स्थान पर अग्नि रहती थी। यह आचार्य की अपनी अग्नि होती थी। ब्रह्मचारी रोज़ सन्ध्यासमय आचार्य की उस अग्नि में एक लकड़ी फेंक देता था। यही उस का समिद् होम था [illegible] लोग लकड़ी के जो टुकड़े इकट्ठे किये जाते थे [illegible] आचार्य के घर में वेदाध्ययन के समाप्त होने [illegible] से पहले अग्निस्थापन करनी होती थी। [illegible] इसी अग्नि में [illegible] का हवन आदि करना पड़ता था। इस अग्नि का नाम गृह्य, आव [illegible] स्मार्त कर्म अथवा [illegible] गृह्य अग्नि में [illegible] समझ लेना चाहिए [illegible] पाक यज्ञ होते थे [illegible] होम का अनुष्ठान होता [illegible] नहीं है। [illegible] सकता है। इस [illegible] कुछ वैदिक यज्ञ आज भी प्रचलित हैं [illegible] में यज्ञ करना होता है [illegible] होता है। बाग लगाने या ताल, [illegible] में यज्ञ करना पड़ता है। इन कर्मों को पूर्त कर्म कहते हैं। [illegible] अनुष्ठान वैदिक हैं। वैदिक अनुष्ठानों में इन का नाम गृह्य कर्म या स्मार्त कर्म है। इन के सिवा और एक श्रेणी के वैदिक कर्म थे। उन का नाम श्रौत कर्म था। अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञों के नाम तो आपने सुने ही होंगे।

ये सब श्रौत यज्ञ हैं। गृह्य कर्मों के उपदेश के लिए और एक प्रस्थ ग्रन्थ है, उस का नाम गृह्यसूत्र है। गृह्य-सूत्र में जिन कर्मों के अनुष्ठान का उपदेश है उन्हें आज कल हम लोग करते हैं। उन का चलन इस समय भी समाज में है। किन्तु श्रौत सूत्रों में जिन श्रौत कर्मों का उपदेश दिया गया है वे प्रायः इस समय लुप्त होगये हैं। इस समय उन के नाम ही बाक़ी रह गये हैं। सम्भव है इसके लिए बौद्धविप्लव दायी हो। बौद्धविप्लव के समय बड़े बड़े क्षत्रिय राजाओं ने बड़े बड़े वैश्य सेठों ने वैदिक कर्मों को छोड़ दिया और उन में उनकी श्रद्धा का ह्रास हो गया। बहुत से द्विजों ने गुरु-गृह पर उपनयन के बाद वेदाभ्यास छोड़ दिया यहां तक कि वे जनेऊ उतार कर अपनी इच्छा से शूद्रों के आचरण करने लगे। पहले कह चुके हैं कि इस समय अनेक मनुष्य अपने शूद्रत्व के लिए बड़े दुखी हैं। वे लोग द्विजत्व प्राप्ति के लिए बड़ी चेष्टा कर रहे हैं। उन के पूर्व पुरुष ही उन के शूद्रत्व के लिए दायी हैं। याजकताव्यवसायी ब्राह्मणों की जीविका लुप्त होने लगी। बहुत से ब्राह्मणों का जो गृहस्थ द्विजों के घर याजकता करके जीविका करते थे अब लोप होने का समय आ गया। आचार्य्य के घर बहुत वर्षों तक रह कर वेद के कर्म्मकाण्ड के अभ्यास का प्रयोजन कुछ न रहा। बहुत वर्षों तक वेदाभ्यास या ब्रह्मचर्य्य का आचरण जो पहले एकान्त कर्तव्य था—आवश्यकता न रहने से क्रमशः लुप्त होने लगा। उपनयन और समावर्त्तन के नाम बाक़ी रह गये, सार्थकता जाती रही। परिणाम यह हुआ कि जब अभिज्ञ याजक न रहे

तब जटिल श्रौत अनुष्ठानों का एक तरहसे अभाव ही होगया। किन्तु वेदपन्थी ब्राह्मणों ने वेद को फिर भी नहीं त्यागा, कम से कम गृह्य अनुष्ठानों को वे करते ही रहे। अग्निहोत्र, अग्नि-ष्टोम आदि श्रौत यज्ञ तो प्रायः लुप्त हो गये किन्तु कुश-कण्डिका आदि गृह्य याग आज कल की द्विजाति समाज में भी जारी हैं।

गृह्य अग्नि का ज़िक्र कर रहा था। उस अग्नि में गृह्य सूत्रों में कहे सभी कर्म्म होते हैं। गृह्य अग्नि के सम्बन्ध में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यज्ञानुष्ठान का असली तात्पर्य्य समझने के लिए श्रौत अग्नि और श्रौत अग्नि में होने वाले यज्ञों को अच्छी तरह जानना चाहिए। आप धीरज रखें—मैं सुनाता हूं।

श्रौत अग्नि का मामला वेद पंथियों के गार्हस्थ्य जीवन में एक बड़ा मामला है। गार्हस्थ्य जीवन की सम्पूर्णता के लिए इस श्रौत अग्नि की आवश्यकता है किन्तु श्रौत अग्नि विवाह के बाद स्थापित की जाती है। जिस का विवाह नहीं हुआ है उन्हें श्रौत अग्नि स्थापित करने का अधिकार नहीं है। विवाह के बाद गृहस्थ का नाम गृहपति होता है। पहले स्थान के किसी भाग में अग्निशाला या अग्न्यागार स्थायी भाव से बनाना पड़ता था। सपत्नीक गृहस्थ उसी अग्न्यागार में विधि-पूर्वक श्रौत अग्नि की स्थापना करता था। अग्नि की इस प्रतिष्ठा का नाम अग्न्याधान या अग्न्याधेय था। संक्षेप में इस का हाल सुनाता हूँ। आपने तीन अग्नियों के नाम सुने होंगे गार्हपत्य आहवनीय और दक्षिणाग्नि। ये तीनों श्रौत

अग्नियां हैं। अग्निशाला में चौकोन वेदी बनाकर उसके तीन ओर ये अग्नियां स्थापित की जाती हैं। वेदी की पश्चिम ओर गार्हपत्य, पूर्व ओर आहवनीय और दक्षिण ओर दक्षिणाग्नि का स्थान होता है। मट्टी का घेरा बनाकर अग्नि का स्थान बनाया जाता है। गार्हपत्य का स्थान चतुर्भुजाकार, आहवनीय का गोल और दक्षिणाग्नि का अर्द्धचन्द्राकार होता है। तीनों का क्षेत्रफल [illegible] बराबर होता है, एक हाथ लम्बा एक हाथ चौड़ा। गार्हपत्य अग्नि गृहपति की अग्नि है, वह गृहपति की प्रतिनिधि है। इस अग्नि को घर का मालिक [illegible] हैं। आहवनीय अग्नि देवताओं की अग्नि है। देवताओं के लिए इस में अनेक द्रव्यों की आहुति दी जाती है। आहुति देने से आहवनीय नाम पड़ा है। इसका पूर्व [illegible] देवताओं के राजा इन्द्र पूर्वदिशा [illegible] पूर्व की ओर मुँह करके देवताओं का पूजन करते हैं। इसी लिए आहवनीय का स्थान पूर्व दिशा में होता है। दक्षिण दिशा पितरों की है। पितरों के [illegible] दक्षिण [illegible] के स्वामी हैं। दक्षिणाग्नि में पितरों के लिए [illegible] छोड़ा जाता है। अन्वाधान कर्म के एक दिन पहले देवगृह के लिए प्राय-श्चित्त और वृद्धि श्राद्ध आदि माङ्गलिक कार्य करके यजमान कर्म के लिए प्रस्तुत होता है। अ[illegible] नामक [illegible] निर्दिष्ट स्थान से अग्नि लाकर गार्हपत्य के स्थान में रख देता है। शाम होते ही गृहस्थ और उस की स्त्री अग्निशाला में आ जाते हैं और वे दोनों रात भर वहीं रहते हैं। एक ऐसा समय था कि लकड़ी से लकड़ी घिस कर आग पैदा की जाती थी। यज्ञ

कर्म्म की यह प्राचीन प्रथा लुप्त नहीं हुई। इसे ही Survival in culture कहते हैं। सामाजिक अनुष्ठानों में और खास कर धर्मसम्बन्धी अनुष्ठानों में किसी भी देश में मनुष्य पुरानी प्रथा को यों ही छोड़ना नहीं चाहते। पुरानी बातों का मोह छोड़ना उन्हें पसन्द नहीं। शमी वृक्ष पर जो पीपल का वृक्ष हो जाता है उसकी लकड़ी घिसने से सहज में ही आग पैदा हो जाती है। इसी काठ से दो अरणियां बनाई जाती हैं। दोनों अरणियां रात भर अग्निशाला में ही रक्खी रहती हैं। गार्हपत्य में रक्खी आग को सारी रात लकड़ी डाल कर प्रज्वलित रखना पड़ता है। प्रातःकाल होने पर अध्वर्यु उस आग को बुझा देता है। सूर्योदय से पहले ही उन दोनों अरणियों से रगड़ कर नई आग पैदा की जाती है। इस कर्म्म को अग्निमन्थन कहते हैं। अग्निमन्थन से पहले एक घोड़ा मँगा लिया जाता है। एक अरणि को यजमान पकड़ता है, दूसरी अरणि से पहले यजमान-पत्नी बाद को अध्वर्यु अग्नि उत्पन्न करता है। मट्टी के खोपड़े में रखे हुए गोबर में वह अग्नि ग्रहण की जाती है। यजमान उसे फूंक मार कर जला देता है। अध्वर्यु उस अग्नि में और लकड़ी रख कर उसे जलाता है और फिर गार्हपत्य में रख देता है। ब्रह्म नामक ऋत्विक् इसी समय सामगान करता है। गार्हपत्य से अग्नि लेकर अध्वर्यु आहवनीय के स्थान में पहुँचता है. घोड़ा आगे आगे चलता है। यजमान घोड़े के पीछे चलता है ब्रह्मा सामगान करता है। आहवनीय के स्थान में एक पांव रखाकर घोड़े को पश्चिम की ओर मुंह कर के खड़ा किया जाता

है। अध्वर्य्यु घोड़ेके उस पांव में अग्नि को छुआ कर आहवनीय में रख देता है। ब्रह्मा इस समय फिर सामगान करता है। इस तरह गार्हपत्य और आहवनीय अग्नि के स्थापन हो जाने पर अध्वर्य्यु फिर गार्हपत्य से अग्नि लेकर दक्षिणाग्नि के स्थान में जाता है। इस तरह तीनों अग्नियों की स्थापना के समय ब्रह्मा तीन बार सामगान करता है। फिर सब अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं और घोड़े को छोड़ देते हैं। इस के बाद पूर्णाहुति होम होता है। गार्हपत्य अग्नि में थोड़ा सा घी गरम किया जाता है। अध्वर्य्यु जुहू नामक काठ के बने हत्थे में वह घी लेकर, आहवनीय क पास खड़े होकर यजुर्मन्त्र द्वारा आहवनीय अग्नि में आहुति देता है। यजमान उसे छुए रहता है। इसी का नाम पूर्णाहुति है। पूर्णाहुति पर ही अग्न्याधान कर्म्म समाप्त हो जाता है। अग्न्याधान के कई दिन बाद तक यजमान ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन करता है। गार्हपत्य अग्नि दिन रात जलती रहती है। वह बुझाई नहीं जाती। उस के बुझ जाने पर दोष लगता है। आहवनीय और दक्षिणाग्नि दिन रात नहीं जलती रहतीं, जरूरत पड़ने पर गार्हपत्य अग्नि लेकर वे जला दी जाती हैं और उन में देवता और पितरों के लिए याग किया जाता है।

यह अग्न्याधान कर्म्म यजमान के जीवन में अतिप्रधान कर्म्म है। अग्न्याधान के बाद यजमान का विशेषण होता है— आहिताग्नि! आहिताग्नि गृहस्थ ही सोलह आना गृहस्थ है। अग्न्याधान के बाद उस का समस्त श्रौत कर्म्मों में देव यज्ञ और पितृयज्ञों में अधिकार हो जाता है। देवता और पितर

अलक्ष्य भाव से मनुष्य जीवन के नियामक हैं-शुभाशुभ फल के देने वाले हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि देवता मनुष्य के दिये हव्य भोजन के लिए अपेक्षा करते रहते हैं। पितर स्वधा भोजन के लिए प्रयासी रहते हैं। देवताओं और पितरों का मनुष्य पर ऋण है, इस ऋण को बिना चुकाये मनुष्यजीवन असम्पूर्ण रहता है। अतएव जीवन की सम्पूर्णता के लिए देवताओं और पितरों को तृप्त करना होता है इस लिए गृहस्थ के लिए आहिताग्नि होना आवश्यक है। साधारणतः अग्नि के द्वारा देवता और पितरों का प्राप्य पदार्थ पहुँचाया जाता है। अग्नि स्वयं भी एक देवता है और देवताओं का पुरोहित भी है। ऋग्वेद की पहली ऋक् ही है—अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्न धातमम अग्निदेवताओं का पुरोहित है, होता नामक ऋत्विक् है अर्थात् वही देवताओं का आह्वान कर के उन्हें यज्ञ-स्थल में बुलाता है, वही देवताओं का मुख है, उस के मुँह में हव्य डालना देवताओं को देना है। [illegible] है, देवताओं को हव्य पहुँचाता है। गार्हपत्य [illegible] एक पक्ष में गृहस्थ का [illegible] पक्ष में देवताओं [illegible] है। वही गृहस्थाली का [illegible] शुभाशुभ [illegible] देवता है। अतएव गार्हपत्य अग्नि की बहुत यत्न से रक्षा करनी होती है।

मानवतत्वविद् पण्डित [illegible] कि अग्नि [illegible] सिर्फ वेदपन्थी समाज ने ही [illegible] नहीं [illegible] देशों में और समाजों में भी अग्नि का देवत्व स्वीकार किया गया है। अग्निमुख से ही देवता खाद्य ग्रहण करते हैं-ऐसा

अनुमान करने के लिए कुछ कम कारण नहीं है। देवता सूक्ष्म-शरीरी हैं, वे स्थूल अन्न को ग्रहण नहीं कर सकते। किसी द्रव्य को अग्नि में डाल दिया जाय तो वह धूम में, भाफ में और वायु में परिणत हो जाता है। इस तरह सूक्ष्मता पाकर वह देवताओं के सूक्ष्म देह के लिए उपयोगी हो जाता है। देवता ऊर्ध्वलोक में वास करते हैं। अग्निशिखा स्वभावतः ऊर्ध्वमुखी है, वह ऊपर को उठकर धूम्र और भाफ के रूप में देवताओं का खाद्य उन्हें पहुंचा देती है। विशेषतः आर्यजाति में अग्नि का माहात्म्य विशेष बलवान् था। पण्डितलोग कह सकते हैं कि आर्य्यजाति एक समय शीतप्रधान देश में वास करती थी। इसी लिए उस में अग्नि का इतना माहात्म्य है। तिलक महाशय कह सकते हैं कि यह अग्नि माहात्म्य साबित करता है कि आर्य्यजाति सुमेरु प्रदेश पर वास करती थी। जहां छः महीने रात रहती हो वहां आग का जितना आदर हो कम है, वहाँ चौबीस घंटे बराबर आग जलाये बिना किसतरह काम चल सकता है। कास्पीय सागर के किनारे पर बसे बहुत से देशों में मट्टीके तेल के कुए हैं। भूगर्भ से हमेशा किरोसिन की भाफ उठती रहती है और स्वयं ही जल उठती है। उस देश के लोगों के लिए अग्निपूजा स्वाभाविक ही है। इस समय भी उस देश में अग्नि के मन्दिर मौजूद हैं। जो किसी समय आर्यजाति का वास मध्य एशिया में मानते हैं वे इस अनुमान से प्रसन्न होंगे। ग्रीक और रोमन लोग भी हमारी बिरादरी के थे. उन में भी अग्निपूजा का चलन था यह बात शायद आप लोग जानते ही हैं। प्राचीन ग्रीक सभ्यों के अग्नि देव का नाम

Hestia था, प्रत्येक ग्रीक गृहस्थ के घर अग्निशाला होती थी। वहाँ अग्नि रक्षित और पूजित होती थी। ग्रीक लोग जब अपना देश छोड़ कर दूसरे देशों में उपनिवेश स्थापित करने जाते थे तब अपने घर की अग्नि को साथ ले जाते थे। इस तरह उपनिवेश के साथ मातृभूमि का सम्बन्ध पक्का हो जाता था। ग्रीकों में जिसे Hestia कहते थे रोमन लोगों में उसे ही Vesra कहते थे। Vesra देवता रोम नगर में रोमराष्ट्र की रक्षा करने वाला समझा जाता था सब जगह उस की पूजा होती थी। कई कुमारियां अग्निपूजा के लिए नियुक्त होती थीं। उन्हें कौमार धर्म्म का पालन करना होता था। उन्हें कुछ खास अधिकार प्राप्त होते थे। सर्वसाधारण में उन का विशेष सम्मान होता था। फ़ारसवासी दुर्रानियों की बात कहने की ज़रूरत नहीं। प्राचीन दुर्रानी समाज के साथ प्राचीन वेदपन्थी समाज का विशेष पार्थक्य न था। वे लोग भी हमारी तरह ही यज्ञानुष्ठान करते थे। यह बात आप लोग सब जानते ही हैं।

अग्न्याधान में एक घोड़े की ज़रूरत होती है, यह बात ऊपर कही गई है। इस घोड़े का तात्पर्य क्या है—बताना मुश्किल है। मानवतत्त्व के जानने वाले पण्डित इस का तात्पर्य क्या बतायेंगे—मालूम नहीं। सुनते हैं घोड़े के साथ आर्य्य जाति का विशेष सम्बन्ध था। आर्य जाति ने ही शायद जंगली घोड़े को पाल कर उसे मनुष्य के व्यवहार के योग्य बनाया था—Domesticate किया था। मध्य एशिया के कास्पीय और अरल सागर के किनारे की Steppes भूमि में बहुत घास होती है; अब भी होती है, पहले तो बहुत होती थी।

वह ज़मीन घोड़े दौड़ने के लिए विशेष उपयोगी है। योरप और अन्य देशों में भी ये ही पहले पहल घोड़े को लाये। भारतवर्ष में वे लोग घोड़े पर चढ़ कर आये ऐसा अनुमान भी किया जा सकता है। उन के गार्हस्थ जीवन के आरम्भसूचक पहले अनुष्ठान में शायद इसी लिए घोड़ा लाया जाता है। हमारे इस अनुमान पर सम्भव है आप हँसें।

यह अवश्य एक तरह का Survival है। अग्न्याधान में घोड़े के लाने की कुछ सार्थकता बहुत पहले तो थी। बाद को लोग उस का तात्पर्य्य भूल गये किन्तु प्रथा चली रही। पुरातन वैदिक साहित्य में सूर्य्य के साथ घोड़े की तुलना अनेक स्थानों पर देखी जाती है मेकडानल साहब ने अपनी Vedic Mythology में बहुत से दृष्टान्त दिये हैं। आप चाहें तो उन्हें वहाँ देख सकते हैं। सूर्य्य वेदपन्थी समाज का बहुत पुराना देवता है। वह सात घोड़ों के रथ पर चढ़ कर दिग्विजयी वीर पुरुष की तरह आकाश पथ पर भ्रमण करता है। वह स्वयं भी घोड़ा ही है। सूर्य्य के अश्वरूप का वर्णन पुराने साहित्य में मिलता है। एक बार त्वष्टा के साथ उस के जामाता सूर्य्य का झगड़ा हुआ। छाया और संज्ञा की कहानी आप ने सुनी ही होगी। उस समय सूर्य्य ने घोड़े का रूप धारण किया था। याज्ञवल्क्य ऋषिकी तपस्या पर सन्तुष्ट होकर सूर्य्य ने जिस समय उन्हें नया यजुर्वेद दान किया था उस समय भी वे वाजी या घोड़े ही के रूप में ऋषिको दिखाई दिये थे। अग्न्याधान कर्ममें घोड़ा पहले पूर्व की ओर चलता है। फिर आहवनीय में उपस्थित हो कर पश्चिम की ओर मुँह कर

के खड़ा होता है। फिर उसे वहाँ से लौटा लिया जाता है। अनुमान किया जासकता है कि घोड़ा वहाँ सूर्य्य का प्रतिनिधि है और घोड़े की गति सूर्य्य के दैनिक आवर्त्तन की सूचना देती है। यह भी एक अनुमान ही है, आप चाहे माने चाहे न मानें।

अग्न्याधान के बाद आहवनीय अग्नि में प्रतिदिन अग्निहोत्र याग करना होता है। अग्निहोत्र याग नित्यकर्म है। इसमें किसी दिन काम नहीं चल सकता। आहवनीय अग्नि में एक बार प्रातःकाल दूसरी बार सायंकाल आहुति देनी होती है। प्रातःकाल सूर्य्य के लिए और सायं को अग्नि के लिए आहुति दी जाती है। यही अग्निहोत्र का अनुष्ठान है। सूर्य्य और अग्नि दोनों ही ज्योतिःस्वरूप हैं। मानो एक ही देवता की दो मूर्त्तियां हैं। अग्नि का स्थान पृथ्वी पर और सूर्य्य का द्युलोक में है। इन दो देवताओं को आहुति देने से मानो सब को तृप्त कर दिया। क्योंकि सब देवता ही ज्योतिःस्वरूप हैं। इस तरह सूर्य्य के साथ अग्नि का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। अग्न्याधान अनुष्ठान में घोड़े के पाँव से छुआ कर अग्नि की स्थापना के रहस्य का मूल इस तरह से भी पाया जासकता है।

अब अग्निहोत्र की कथा सुनिए। आहिताग्नि गृहस्थ रोज़ सुबह शाम श्रौत अग्नि में अग्निहोत्र करता है। यह गृहस्थका अपना काम है। अशक्त हो तो प्रतिनिधि द्वारा करा सकता है। पुत्र, भाई, भानजा या जामाता प्रतिनिधि होसकते हैं। अध्वर्यु भी कर सकता है। स्वयं आहुति देने से जो फल मिलता

है प्रतिनिधि द्वारा उस से कम मिलता है। अग्निहोत्र के लिए गृहस्थ एक गो पालता था, उस का नाम ही अग्निहोत्री गाय होता था। प्रातः और सायंकाल गृहस्थ गाय के दूध को मट्टी के मलसे में गार्हपत्य अग्नि पर गर्म करता था। आहुति के लिए आम के दो हत्थों की ज़रूरत होती थी। छोटे हत्थे को स्रुव कहते थे। बड़े को अग्निहोत्र हवनी। मलसे में से स्रुव द्वारा चार या पाँच बार दूध ले कर अग्निहोत्र हवनी में डाला जाता था। फिर अग्नि में उस दूध की आहुति दी जाती थी। अनुष्ठान से पहले पत्नी सहित गृहस्थ अग्निशाला में आता था और गार्हपत्य से जलती हुई अग्नि लेकर आहवनीय और दक्षिण अग्नि को प्रज्वालित कर देता था। फिर गार्हपत्य अग्नि में दूध को गर्म करके उसे यथाविधि स्रुव से अग्निहोत्र हवनी में डालता था। इस के बाद आहवनीय में एक समित डाली जाती थी। जब यह जल उठती थी तब अग्निहोत्र हवनी के दूध की आहवनीय में दो बार आहुति दी जाती थी। पहली आहुति अग्नि के लिए होती थी। उस का मन्त्र यह है—भूर्भुवः स्वः ओ३म् अग्निर्ज्योतिः ज्योतिरग्निःस्वाहा। दूसरी आहुति का देवता प्रजापति है। प्रजापति का ध्यान करके बिना किसी मन्त्र के आहुति दी जाती थी। सब दूध की आहुति नहीं दी जाती थी, थोड़ा सा हविःशेष रूप से बचा लिया जाता था। आहुति देने वाला उसे खाता था। आहवनीय में आहुति देने के बाद गार्हपत्य और दक्षिण अग्नि में आहुति देनी होती थी। इस में अग्निहोत्र हवनी की ज़रूरत नहीं होती थी। स्रुव से ही मलसे में से दूध लेकर उसे जलती आग में डालना पड़ता था। गार्हपत्य

में प्रथम आहुति का देवता अग्नि गृहपति और दूसरी का देवता प्रजापति होता है। दक्षिणाग्नि में पहली आहुति का देवता अग्नि अन्नपति और दूसरी का प्रजापति होता है। प्रत्येक आहुति जलती हुई समिधा पर छोड़ी जाती है। आहुति देने के बाद हविःशेष को खाकर प्रत्येक अग्नि में तीन तीन समिधायें डाल कर और तीनों अग्नियों का उपस्थान कर के गृहस्थ अग्निशाला से बाहर आ जाता था। यह तो हुआ सायंकाल का अग्निहोत्र। प्रातःकाल के अग्निहोत्र की विधि सायंकाल जैसी ही है सिर्फ़ देवता अग्नि के बदले सूर्य्य है। वहाँ आहुति का मन्त्र इस प्रकार है—ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। सायंकाल का अनुष्ठान सूर्य्यास्त के बाद करना चाहिए। प्रातःकाल का अनुष्ठान किसी के मत में सूर्य्योदय से पहले करना चाहिए। ऐतरेय ब्राह्मण अनेक वितण्डाओं के बाद सूर्य्योदय के बाद ही अग्निहोत्र करने का समर्थन करता है।

अग्निहोत्र नित्य कर्म्म है। इसे बिना किये काम नहीं चल सकता। गृहस्थ परदेश में हो तो उस का प्रतिनिधि इसे करता है। यहां तक कि जिसकी स्त्री मरगई है ऐसे गृहस्थ को अग्निहोत्र करना चाहिए या नहीं इस पर खूब बहस चली है। पत्नी की मृत्यु के बाद अग्निहोत्र नष्ट हो जाता है। वहां अग्निहोत्र की क्या व्यवस्था होगी—ऐतरेय ब्राह्मण ने यह प्रश्न उठाया है। उसमें कहा गया है, गृहस्थ यदि फिर विवाह न करे तो वह अपने पुत्र, पौत्र या दौहित्र को अनुमति दे सकता है, उस की अनुमति से वे अग्निहोत्र किया करेंगे। ऐतरेय

ब्राह्मण और एक स्थल पर प्रश्न करता है—विपत्नीक व्यक्ति अग्निहोत्र करे या नहीं? उत्तर मिलता है—करे। क्योंकि ऋण को चुकाने के लिए याग करे—ऐसा श्रुतिवचन है, आपने भी यह वचन सुना होगा। जायमानो वै ब्राह्मणः त्रिभिः ऋणवान् जायते। ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी। अर्थात् ब्राह्मण जन्म से तीन ऋणों में बँधा हुआ है। ऋषियों का ऋण ब्रह्मचर्य्य अर्थात् वेदाध्ययन द्वारा, देवताओं का ऋण यज्ञ द्वारा, पितरों का ऋण पुत्रोत्पादन द्वारा चुकाया जाता है, इस लिए जिसके पुत्र है जो यज्ञ करता है और ब्रह्मचारी है वही ऋणमुक्त है। देवताओं के क़र्ज़ को चुकाने के लिए अग्निहोत्र करना अत्यावश्यक है।

अग्निहोत्र यज्ञ नित्यकर्म है। बिना किये काम नहीं चल सकता। इस लिए उस का होना और अच्छी तरह होना सब के लिए उचित है और उस में अधिक समय भी नहीं लगता। कुछ ज़्यादा सामान या ख़र्च की भी ज़रूरत नहीं है। थोड़ा सा दूध होने पर ही काम चल सकता है। यदि किसी कारण से दूध नहीं मिले तो दही या थोड़े से चावलों से भी काम चल सकता है। यदि कुछ भी न मिले तो भी अग्निहोत्र को नहीं छोड़ना चाहिए। अहं श्रद्धां जुहोमि—मैं श्रद्धा की आहुति देता हूँ, इस मन्त्र का संकल्प कर के श्रद्धा का होम करना चाहिए। इसी श्रद्धा होम का दूसरा नाम भावनाहोम या मानसिक अग्निहोत्र है। ऐतरेय ब्राह्मण में एक जगह लिखा है—श्रद्धा ही यजमान की पत्नी है और सत्य ही यजमान है। श्रद्धा

और सत्य आपस में मिलते हैं। मानसिक अग्निहोत्र में श्रद्धा और सत्य इसी मिलाप के कारण स्वर्गलोक को जीत लेते हैं। श्रद्धा होम में किसी पार्थिव द्रव्य की ज़रूरत नहीं होती न किसी तरह की दक्षिणा देनी पड़ती है। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है कि श्रद्धाहोम में मनुष्य देवता और समस्त सांसारिक द्रव्य दक्षिणास्वरूप हैं। शाम को श्रद्धाहोम में यजमान मनुष्यों को देवता के हाथ में दक्षिणा के तौर पर अर्पण करता है। मनुष्य देवताओं के अधीन हो जाते हैं। फिर प्रातःकाल को देवताओं को वह दक्षिणास्वरूप से मनुष्यों के अर्पण करता है इसी लिए देवता दिन में मनुष्यों के अधीन रह कर उन का हित साधन करते हैं।

ब्राह्मणादि ग्रंथों की इस उक्ति से आप लोग अग्निहोत्र का माहात्म्य थोड़ा बहुत समझ सकेंगे। अग्निशाला की अग्नि की बड़े यत्न से रक्षा की जाती थी और वह किसी तरह अशुद्ध न हो इस बात का पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाता था। किसी कारण से अशुद्ध होने पर उस के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता था अग्नि के बुझ जाने पर फिर उसकी प्रतिष्ठा करनी पड़ती थी। अग्न्याधान की बात पहले ही कह चुके हैं। अग्नि का पुनराधान भी उसी तरह होता है। मानवतत्त्व के जानने वाले पण्डित अग्नि-भक्ति के मूल का अन्वेषण कर के शायद कह उठें कि इस से सिर्फ़ मनुष्य की आदिम तथा असभ्य अवस्था का पता लगता है। जिस समय अग्नि उत्पन्न करने का सहज तरीक़ा नहीं मालूम हुआ था उस समय घर में हर समय आग रक्खे बिना काम नहीं चल सकता था। अब भी

हमारे जिन ग्रामों में दियासलाई का प्रवेश नहीं हुआ है वहां बड़े यत्न से आग रक्खी जाती है। मनुष्य की असभ्य अवस्था में इस तरह अग्निरक्षा करना प्रत्येक गृहस्थ का धार्मिक कर्तव्य Religious Duty हो गया था। ऐसा न होता तो हठात् आग की ज़रूरत होनेपर आग कहांसे मिलती। अग्न्याधान और अग्निहोत्र का मूल यह भी हो सकता है। इस में लज्जित या दुःखित होने को कुछ ज़रूरत नहीं. मनुष्य बन्दर से उत्पन्न हुआ है यदि इस मे लज्जा की कुछ बात नहीं है तो सभ्य मनुष्य का कोई धार्म्मिक अनुष्ठान यदि असभ्यता से उत्पन्न हुआ है तो इस में शर्माने की कौन बात है। वेदपन्थी समाज की जिस अवस्था का वर्णन हम कर रहे हैं उस समय वेदपन्थी मनुष्य असभ्य नहीं था—यह निश्चित बात है। उस समय के अनुष्ठानों के असली तात्पर्य्य कुछ हों, पर उस समय उन में तात्पर्य्य आरोपित किये गये थे और उस समय जो तात्पर्य्य आरोपित किये गये थे वही उस समय के सामाजिक और गार्हस्थ जीवन के नियामक थे। अग्निहोत्र को उससमय के मनुष्य किस दृष्टि से देखते थे इस का परिचय आप को मिल गया। आप ने देखा कि गृहस्थित अग्नि समस्त गृहस्थाली का एक Symbol था। इसी अग्नि पर गृहस्थाली स्थापित थी। तीन अग्नियोंमें गार्हपत्य अग्नि गृहपति की प्रतिनिधि होती था। एक ओर गृहस्थ और दूसरी ओर देवता और पितरों की वह मध्यस्थता करती थी। गार्हपत्य से अग्नि लेकर ही आहवनीय और दक्षिण अग्नि जलाई जाती थी। आहवनीय अग्नि देवताओं का

और दक्षिण अग्नि पितरों का मुख है। इसी मुख से वे गृहस्थ से अपना प्राप्य पदार्थ ग्रहण करते हैं और उस के बदले में वे गृहस्थों का कल्याण करते हैं। वेदपंथी समाज के सिद्धान्त Theory से कुछ गृहोंकी समष्टि का नाम समाज था। घर ही समाज की व्यष्टि Unit था और गृहस्थ–घर का सिर्फ़ सामयिक रक्षा करने वाला। गृहस्थ का पार्थिवजीवन कुछ ही दिनोंका होता है। वह उन दिनों में अपने कर्त्तव्य का पालन करके चला जाता है। बाद को पुत्र पौत्रों पर घर की रक्षा का भार पड़ता था। गृह स्थायी होता था, गृहस्थ पुत्र पौत्र आदि क्रमसे उसकी रक्षा करते थे। गृहस्थ के पास जो धन सम्पत्ति होती थी उसे वह देवता और पितरों के प्रसाद से भोग करता था, वह उस की अपनी न थी। वह उस सम्पत्ति का सिर्फ़ रक्षा करने वाला होता था। पितृ पितामह से वह उस सम्पत्ति को पाता था और पुत्र पौत्रादि के लिए छोड़ देने के लिए वह बाध्य था। उस धन सम्पत्ति को नष्ट करने का उसे अधिकार न था क्योंकि वह उस का सिर्फ़ रखवाला था। उस सम्पत्ति को अपने जीवन में भोग करने के कारण ही वह पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीन पुरुषोंके लिए पिण्डदान करता था और अपने जीवन के बाद पुत्र पौत्र प्रपौत्र इन तीन पुरुषों से पिण्ड पानेकी इच्छा रखता था। दक्षिण अग्नि में पिण्ड पितृ यज्ञ अनुष्ठित होता था। इस तरह इस अग्नि के द्वारा घर की अविच्छिन्न धारा क़ायम रहती थी। इस हिसाब से यह अग्निहोत्र अनुष्ठान गृहस्थ का केवल व्यक्तिगत धर्म्मानुष्ठान था यह मानना या उसे इतना संकीर्ण सम-

झना ठीक मालूम नहीं होता । वास्तव में यह अनुष्ठान सामाजिक अनुष्ठान था। अग्निद्वारा ही गृहस्थ का समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित होता था । अग्नि रक्षा करने के कारण ही उसे धन सम्पत्ति के भोग करने का अधिकार होता था और धन सम्पत्तिपर अधिकार होनेके कारण ही समाजके अन्यान्य गृहस्थों के साथ उस का लेन देन का सम्बन्ध होता था। समाज के अन्यान्य व्यक्ति उस से सहायता पाते थे और उसे सहायता देते थे। इस रूप में राष्ट्र के साथ भी उसका सम्बन्ध होता था। अग्निहोत्र अनुष्ठान इस Symbolic तात्पर्य के कारण ही गृहस्थ जीवन का प्रधान अनुष्ठान था और सर्वप्रधान नित्यकर्म समझा जाता था-हमें तो इसमें संदेह करने का कुछ भी कारण नहीं मालूम होता।

यहां कई प्रश्न उठते हैं उन सब प्रश्नों के उत्तर हम नहीं दे सकेंगे। धर्मशास्त्र में हमारा उतना ज्ञान नहीं है सुधी जनों के सामने हम उन प्रश्नों को सिर्फ रख देंगे। आचार्य के घर विद्या पढ़ कर घर न लौटने पर न गृहधर्म में अधिकार होता था और न पत्नीग्रहण का ही हक़ हासिल होता था । पत्नीग्रहण किये बिना न अग्न्याधान करने का अधिकार मिलता था और न अग्निहोत्र आदि श्रौतकर्मों में अधिकार होता था। विवाह करने पर अग्न्याधान करना ही पड़ता था—ऐसा नियम था या नहीं? पिता की मौजूदगी में पुत्रने आचार्यगृह से लौट कर विवाह कर लिया, ऐसी अवस्था में वह अपने लिए अलग अग्न्याधान करने के लिए बाध्य है या नहीं? यदि बाध्य है तो एक ही घर में कई अग्निशालायें बनानी

पड़ेगी। एक ही घर में कई अग्निशालायें होती थीं या नहीं ? यदि ऐसा था तो हम ने ऊपर जो सिद्धान्त स्थिर किया है उस में व्याघात होगा। यह भी हो सकता है कि पिता की मौजूदगी में विवाहित पुत्र के लिए अलग अग्न्याधान करने की ज़रूरत न होती हो। यह भी होसकता है कि उसे पिता की मौजूदगी में कोई भी श्रौतकर्म न करना पड़ता हो करना पड़ता हो तो पिता की अनुमति से पिता की अग्नि में ही करसकता हो। पुत्र पिता का प्रतिनिधि होकर जब कि पिता विदेश में हो पिता की अग्नि में अग्निहोत्र करेगा—जब ऐसा नियम है तब यह अनुमान कर लेना असङ्गत नहीं मालूम होता कि पुत्र को अलग अग्नि स्थापन करने की आवश्यकता न थी। उसे अलग श्रौतकर्म करने की आवश्यकता न थी। या, वह अलग ही अग्निस्थापन करना चाहे तो उसे पिता से अलग होकर दूसरे स्थान में अपनी गृहस्थाली का पृथक् प्रबन्ध करना पड़ता होगा। उसी घर में अग्निशाला बनाकर वह अपने लिए अग्निस्थापन करता होगा। पिता की मौजूदगी में उन से जुदा हो कर रहने की उस समय प्रथा थी या नहीं और यह कि वह प्रथा विधि-सङ्गत थी या नहीं इस का हमें पता नहीं। हिन्दू आईन में जिन की विशेष गति है वे इस का उत्तर देंगे। आजकल हमारी समाज में एकान्नवर्त्ती प्रथा का चलन है। जिस समय की बात हम लिख रहे हैं उस समय एकान्नवर्त्ती प्रथा किस रूप में प्रचलित थी—यह प्रश्न भी इसी के साथ पैदा होता है। पिता की मौजूदगी में पुत्र पिता के अधीन होकर उस के साथ रहते हैं,

पिता की मृत्यु के बाद वे यदि चाहें तो पैतृक सम्पत्ति को बांट कर अपना अलग घर बना लेते हैं-एकान्नवर्त्ती परिवार का यही नियम है। आप लोग पितृतन्त्र परिवार Patriarchal family का हाल जानते ही हैं। इस प्रथा में गृहपति पिता का पुत्रों पर हर तरह का अधिकार है। पुत्र उस के भृत्य हैं, सब तरह से उस के अधीन हैं। पिता चाहे तो उन्हें वध-दण्ड तक दे सकता है। हमारे प्राचीन समाज में पिता की इतनी क्षमता नहीं थी-यह मालूम होता है। पुत्र के पैदा होते ही पिता की सम्पत्ति में उस का भावी स्वत्व हो जाता था। पिता उस स्वत्व से उसे वञ्चित नहीं कर सकता था क्योंकि पैतृक सम्पत्ति उस की अपनी नहीं है, वह उस घराने की सम्पत्ति है, जिसका कि वह सिर्फ रक्षक trustee है। इसी लिए पुत्र के ऊपर पिता की क्षमता सङ्कीर्ण और सीमाबद्ध थी। ऐसी दशा में पिता की मौजूदगी में पुत्र को कितनी स्वाधीनता होती थी-यह विचारने की बात है। यदि पुत्र को इस तरह की स्वाधीनता प्राप्त थी तो पैतृक दायाधिकार में किसी तरह का संकोच तो नहीं होता था-यह भी विचारणीय है। अग्निहोत्र के प्रसङ्ग में ये प्रश्न स्वयं पैदा होते हैं। हम इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते। धर्मशास्त्रव्यवसायी दो चार पण्डितों से पूछने पर भी कोई पते की बात मालूम नहीं हुई। ये प्रश्न हमने इस लिए लिख दिये हैं कि आप लोग इन पर विचार करें।

अग्न्याधान और अग्निहोत्र का विवरण देकर अब हम विदा होते हैं। इष्टि-याग, पशुयाग और सोमयाग आदि कुछ

श्रौत यज्ञों का विवरण लेकर फिर उपस्थित होने की इच्छाहै बाद में यज्ञानुष्ठान का व्यापक अर्थ ग्रहण कर के वेदपन्थियोंके जातीय जीवन में उस की तत्परता समझने की चेष्टा करने का विचार भी है।

—०—

इष्टि-याग

एक तरह के श्रौत यज्ञ का नाम इष्टि याग है आहिताग्नि गृहस्थ को यह यज्ञ मास में दो बार अमावस्या और पूर्णिमा को करना होता था। यह यज्ञ कम से कम तीस साल तक तो अवश्य करना पड़ता था विधि तो जन्म भर करने की थी। मावस के दिन जो इष्टियाग किया जाता है उसे दर्शयाग और पूर्णिमा के याग को पूर्णमास याग कहते हैं। दोनों यागों का विधान एक ही है। हम केवल पूर्णमास याग का विवरण देते हैं। पूर्णमास याग के विधान को जान लेने से सब तरह के इष्टियागों का विधान जाना जा सकता है। याज्ञिकों की भाषा में पूर्णमास याग सब तरह के इष्टियागों की प्रकृति या Model है। अन्य इष्टियाग उसी के परिवर्तित रूप हैं। पूर्णमास याग की विधि सभी इष्टियागों में बरती जाती है, केवल क्षेत्रभेद होने पर विशेष विधि का प्रयोजन होता है।

हर पूर्णिमा को पूर्णमास याग करना चाहिए। इस यज्ञ में दो प्रधान आहुतियां हैं। पहली आहुति अग्नि देव के लिए

और दूसरी अग्नि और सोम के लिए—एक साथ। जिस चीज़ की आहुति दीजाती है उस का नाम पुरोडाश है। जौ या चावल की एक तरह की रोटी का नाम पुरोडाश है। जौ या चावलों को पीसकर और अग्नि पर सेक कर यह रोटी बनाई जाती है। अध्वर्यु नामक ऋत्विक् इस रोटी को अपने हाथ से बनाता है। कुछ मुट्ठी जौ या धान ओखली में रख कर कूटे जाते हैं। फिर छाज या सूप से फटक कर भुस्सी और नाज अलग अलग किया जाता है। नाज को सिल पर पीस कर पिट्ठी बनाई जाती है। इस पिट्ठी को सेक कर रोटी या पुरोडाश तयार किया जाता है। [illegible] के लिए मट्टी की छोटी छोटी कुछ रकाबियां होती हैं। कुछ के [illegible] चौकोन होती हैं, उन में से कुछ के कोने तोड़ कर उन्हें घिस कर अर्द्धवृत्ताकार बना लिया जाता है। चौकोन रकाबी को बीच में रख कर उन के चारों ओर अर्द्धवृत्ताकार रकाबियां इस तरह रक्खी जाती हैं कि बीच में झिरी न रहे। अग्नि के निमित्त प्रथम पुरोडाश के लिए इस तरह आठ रकाबियां लगाई जाती हैं। इसे अष्टकपाल पुरोडाश कहते हैं। अग्नि और सोम के निमित्त द्वितीय पुरोडाश के लिए ग्यारह रकाबियां लगाई जाती हैं. इसे एकादशकपाल पुरोडाश कहते हैं।

गार्हपत्य अग्नि पर ही सेनकें तपाई जाती हैं और उसी पर जौ या चावल की पिट्ठी को सेका जाता है। इस तरह पुरोडाश तयार किया जाता है, फिर उस में घी मिला कर, उसे वेदी के ऊपर यथास्थान रख दिया जाता है। समय आने पर इसी पुरोडाश की आहुति दीजायगी। यह सब काम

अध्वर्यु अपने हाथ से करता है। प्रत्येक कर्म्म के लिए यजुर्वेद के खास मन्त्र निर्दिष्ट हैं।

अब प्रधान याग की बात चलती है। प्रधान याग से पहले और बाद को कर्म्मांगस्वरूप कुछ अप्रधान याग भी करने पड़ते हैं। कुछ होम भी करना पड़ता है। याग और होम एक चीज़ नहीं हैं। याग के समय अध्वर्यु आहुति देता है, दूसरा ऋत्विक् मन्त्र पढ़ता है, उसे होता कहते हैं। होता देवता का आवाहन कर के मन्त्र पाठ करता है। मन्त्र के बाद वह वौषट् शब्द का उच्चारण करता है, इसे वषट्कार कहते हैं। वषट्कार के साथ ही अध्वर्यु आहुति का द्रव्य अग्नि को समर्पण कर देता है। उसे कोई मन्त्र पढ़ना नहीं पड़ता। इसी का नाम याग है। संक्षिप्त विधि का नाम होम है। उस में होता की आवश्यकता नहीं होती। अध्वर्यु अग्नि के पास बैठ कर स्वयं ही यजुर्मन्त्र पढ़ता है और मन्त्र के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करता है। इसे स्वाहाकार कहते हैं। स्वाहा के साथ ही अग्नि में आहुति छोड़नी पड़ती है। इसे होम कहते हैं। पूर्णमास यज्ञ में प्रधान याग के पहले और बाद को जिन अप्रधान याग या होमों को करना पड़ता है उन सब का क्रमशः वर्णन किया जाता है।

पूर्णमास याग में चार ऋत्विकों की आवश्यकता होती है। १-अध्वर्यु, पुरोडाश बनाने से आहुति देने तक सब काम अध्वर्यु को करने होते हैं। मुख्यतः यजुर्वेद के मन्त्रों की सहायता से उसे काम करना पड़ता है इस लिए उस का यजुर्वेदज्ञ होना ज़रूरी है। इस लिए ऋत्विकों में अध्वर्यु प्रधान

है। यह अध्वर्यु अर्थात् यज्ञ का देह बनाता है। दूसरे ऋत्विक् का नाम 'होता' है। यह आहुति देनेसे पहले मन्त्रपाठ द्वारा देवता का आवाहन करता है। होता शब्द ह्वे धातु से बना है। यह देवता का आवाहन करता है इस लिए इसे होता कहते हैं। होता को ऋग्वेद के ही मन्त्र अधिक पढ़ने होते हैं। इस लिए होता का ऋग्वेदज्ञ होना ज़रूरी है। इष्टियाग में सामगान की ज़रूरत नहीं होती। इस लिए उद्गाता या अन्य सामगायी ऋत्विक् की आवश्यकता नहीं पड़ती। तीसरे ऋत्विक् का नाम ब्रह्मा है। यह अध्वर्यु और होता दोनों के ऊपर होता है दोनों के कर्मों को देखता है, भूल होजाने पर उस का संशोधन कर देता है। चौथे ऋत्विक् का नाम अग्नीत् है। यह ब्रह्मा का सहकारी होता है। इन चारों ऋत्विकों को पहले निमन्त्रण देकर बुला लिया जाता है, फिर पूर्णमास याग का आरम्भ किया जाता है।

याग के पहले दिन पूर्वाह्ण में अन्वाधान और अपराह्ण में व्रत रखा जाता है। पूर्वाह्ण में यजमान गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि—इन तीनों अग्नियों में एक एक समिधा डालकर अग्नियों को यज्ञके लिए अनुकूल रखता है। मानो अग्नि से कह दिया जाता है कि कल मैं यज्ञ करूँगा इसी समय से आप तयार रहिए। शाम को यजमान स्नान कर के कुछ खालेता है। फिर अग्नि के पास खड़ा होकर मैं सच बोलूँगा आदि कई एक नियमों के पालन की प्रतिज्ञा करता है। इसी कर्म का नाम व्रतग्रहण है। पत्नीसहित यजमान यज्ञशाला में ही सोकर रात काटता है।

दूसरे दिन प्रातःकाल अग्निहोत्र की समाप्ति के बाद इष्टि-याग होता है। वरण के बाद ब्रह्मा आहवनीय के दक्षिण में आसन पर बैठता है। वहां बैठे बैठे ही वह सब कामों को देखता रहता है। ब्रह्मा की बाईं तरफ यजमान बैठता है। गार्हपत्य अग्नि के दाहनी ओर यजमान की स्त्री बैठती है। गृहिणी होने के कारण गार्हपत्य से ही उसका विशेष सम्बन्ध है। वेदी के उत्तर में होता और अग्नीत् का आसन होता है। अध्वर्यु याग के समय बैठने नहीं पाता उसे अनेक कामों के कारण इधर उधर घूमना पड़ता है।

वरण के बाद ब्रह्मा जब अपने स्थान पर बैठ जाता है तब प्रणीताप्रणयन का काम शुरू होता है। प्र-उपसर्ग का अर्थ है सामने पूर्व की ओर, प्र-णयन शब्द का अर्थ है पूर्व मुख होकर ले जाना। पूर्व मुख होकर थोड़ा सा जल आहवनीय के पास रक्खा जाता है। पहले ही कहा जा चुका है कि वेदी के पूर्व में आहवनीय का स्थान होता है। उस जलका नाम प्रणीता है। संस्कृत भाषा में अप् शब्द स्त्री लिङ्ग है, प्रणीत विशेषण स्त्री लिङ्ग में आकारांत होता है। यज्ञ समाप्त होने तक वह जल वहीं रक्खा रहता है। तात्पर्य यह है कि वह अपने स्थान पर रक्खा हुआ यज्ञकी रक्षा करता है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि असुर और राक्षसों के लिए जल वज्रस्वरूप है। वे उसे देख कर यज्ञ भूमि में नहीं आ सकते। इधर अध्वर्यु यज्ञ की सामग्री तयार कर रखता है और समय होने पर वेदी के पास लगा देता है। इष्टि-याग में अनेक चीज़ों की ज़रूरत होती है। उन चीज़ों के नाम जान लेने चाहिएं। श्रेणिविभाग

कर के हम उन का उल्लेख करते हैं। यज्ञसम्बन्धी कुछ काष्ठ के टुकड़ों की आवश्यकता होती है, इन्हें समिन् कहते हैं। तीन समिधाओं से आहवनीय अग्नि का घेरा बनाया जाता है। इन तीनों का नाम परिधि है। और कुछ समिधायें याग से पहले आग जलाने के लिए अलग रखी रहती हैं। आग जलाने का नाम सामिन्धन है। अध्वर्य्यु एक एक समिधा आहवनीय अग्नि में फेंक देता है और होता एक एक ऋक् मन्त्र पढ़ता है। अग्नि को जलाने के लिए प्रयुक्त होनेके कारण इन मन्त्रों का नाम सामिधेनी ऋक् है (२) कुछ मुठ्ठे कुशों की भी ज़रूरत होती है। वेदी के पास कुशासन को बिछाकर उन के ऊपर याग का सामान सजाया जाता है। थोड़ी कुशायें बांध कर अलग रख दी जाती हैं, इन्हें प्रस्तर कहते हैं। जिस हत्थे में आहुति का द्रव्य लेकर आहुति दी जाती है उसे जुहू कहते हैं। जुहू प्रस्तर पर रक्खा रहता है। इस प्रस्तर को साधारण चीज़ न समझिए इस का विशेष तात्पर्य्य है, वह फिर बतायेंगे।। (३) पूर्णमास यज्ञ के प्रधान याग में पुरोडाश की आहुति होती है उससे पहले और बाद को अप्रधान यागों में घी की आहुति होती है। यज्ञ में साफ़ करके जो घी काम में लाया जाता है उसे आज्य कहते हैं। मट्टी के एक मलसे में वह घी रखा रहता है, उसे आज्यस्थाली कहतेहैं। आज्यस्थाली में से आज्य लेने के लिए काठ के चार हत्थों की ज़रूरत होती है उन में से एक को ध्रुवा कहते हैं। वेदि के ऊपर स्थिरभाव से रखे रहने के कारण उस का यह नाम पड़ा है। आज्यस्थाली में से घी निकाल कर ध्रुवे में रख लिया

आता है और यज्ञ के समय इसी में से आज्य लिया जाता है। ध्रुवे में से आहुति के अर्थ आज्य लेने के लिए एक छोटा हत्था होता है, उसे स्रुव कहते हैं । एक बड़ा हत्था होता है जिसे जुहू कहते हैं। जुहू का नाम पहले भी लिया जाचुका है। आहुति के समय अध्वर्यु छोटे स्रुव से ध्रुवे में से आज्य लेता है। और उसे जुहू में डाल देता है । चौथे हत्थे का नाम उपभृत् है, यह जुहू से छोटा होता है। याग के समय अध्वर्यु दाहने हाथ में जुहू और बायें हाथ में उपभृत् ग्रहण करता है। उपभृत् जुहू के नीचे रहता है। मतलब यह कि जुहू का द्रव्य भूमि में न गिरे, गिरे तो उपभृत् में रहजाय। (४) पुरोडाश बनाने के लिए कुछ सामान की आवश्यकता होती है। जैसे (क) अग्निहोत्रहवनी-इसकी बात अग्निहोत्र के प्रसङ्ग में कही जाचुकी है। इष्टियाग में वही अग्निहोत्र हवनी पुरोडाश के लिए जौ या धान लाने के लिए व्यवहृत होती है। (ख) ऊखल-मूसल-जौ या धान को ओखली में रख कर मूसल से कूड़ा जाता है। (ग) छाज, धान में से भूसी निकालने के लिए ज़रूरी होता है। (घ) दृषत् और उपल या सिल और बाट—चावल पीसने के काम आता है। (च) शम्या-एक काठ का टुकड़ा—चावल पीसने के समय सिल के नीचे यह काठ का टुकड़ा लगा दिया जाता है जिससे सिल ढलवाँ होजाती है और चावल पीसने में सुविधा होती है। (छ) कृष्णाजिन अर्थात् काले हिरन का चमड़ा—चावलों के कूड़ने के समय ओखली के नीचे और पीसने के समय सिल के नीचे बिछाया जाता है।

अध्वर्य्यु वेदिके ऊपर कुशा बिछा कर सब सामान इकट्ठा कर लेता है, बाद को याग के लिए आहवनीय अग्नि अच्छी तरह जलाई जाती है। इसे ही अग्निसमिन्धन कहते हैं, इस का वर्णन पहले ही होचुका है। होता एक एक सामिधेनी ऋक् पाठ करता है और अध्वर्य्यु एक एक समिधा आहवनीय में डालता जाता है. आहवनीय अग्नि जलने लगती है।

यज्ञ का सब सामान ठीक होगया, पुरोडाश तयार करके वेदि के पास ठीक स्थान पर रख दिया गया आहवनीय अग्नि जलाई गई, अब याग के लिए देवताओंका आवाहन होगा यह काम होता का है किन्तु होता साधारण मनुष्य है उस के बुलाने पर देवता आने क्या लगे? हम पहले कह चुके हैं कि अग्नि स्वयं देवताओं का होता है। अग्निके बुलाने पर देवता आयँगे, अग्नि को इस काम के लिए नियुक्त करना होगा पर अग्नि को कौन बुलाये? अध्वर्य्यु और होता दोनों की बात अग्नि क्या सुनने लगी! प्राचीन ऋषि लोग मन्त्रद्रष्टा थे अलौकिक क्षमता से उन्होंने मन्त्रों की प्राप्ति की थी उन्हीं मन्त्रों से वे अग्नि को बुलाते थे इसलिए अग्नि उनकी बात पर कान देती थी। ऋषियों को उस अग्नि का नाम आर्षेय अग्नि या ऋषियों की अग्नि है। इसे प्रवर अग्नि भी कहते हैं। देवताओं को बुलाने में पहले होता के वरणको प्र-वरण कहते हैं। यजमानका नियुक्त किया होता मनुष्य है, किन्तु अग्नि देव-होता है। मनुष्यहोता का जिस तरह वरण किया जाता है उसी तरह देव-होता अग्नि का भी। यजमान के गोत्र के प्रवर्त्तक ऋषि की दुहाई दीजाय तो उस ऋषि की अग्नि उस

की बात सुन लेती है। अतएव उन ऋषियों के नामानुसार देव-होता अग्नि को बुलाकर बाद को इसी अग्नि के प्रतिनिधि के रूप में मनुष्य होता का वरण किया जाता है। इस तरह नियुक्ति होजाने पर मनुष्य होता उस पूर्व ऋषि की अग्नि का आवाहन करता है और उस अग्नि को ही मन्त्रद्वारा और देवताओं के आवाहन के लिए अनुरोध करता है। वरण के बाद होता वेदि के उत्तर में अपने स्थान पर बैठ जाता है।

अब याग का असली काम शुरू होता है। यागों का क्रम पूर्वक वर्णन सुनिए। (१) प्रयाज याग-प्रधान याग से पहले होता है। इस लिए इसे प्रयाज याग कहते हैं। इस में आज्य की आहुति दी जाती है। अध्वर्यु पहले घी से आघार होम करता है। बाद को प्रयाज याग। पाँच देवताओं के लिए पाँच आहुतियाँ दी जाती हैं। देवताओंके नाम सुन कर आप आश्चर्य करेंगे। कहने को हम आज भी अपने को वेदपन्थी कहते हैं पर इन देवताओं के नाम तक हमें याद नहीं। पहला देवता समित्, दूसरा तनूनपात् या यजमान के गोत्रभेद से नराशंस, तीसरा इडः, चौथा बर्हि, पाँचवाँ स्वाहाकार। पञ्च प्रयाज के बाद अग्नि के लिए और सोम के लिए घी की एक एक आहुति दी जाती है, उसे आज्य भागदान कहते हैं। (३) आज्यभागदान के बाद प्रधान याग आरम्भ होता है। अग्नि के लिए पहला पुरोडाश और अग्नि-सोम के लिए दूसरा पुरोडाश दिया जाता है। दोनों के बीच में अग्नि और सोम के लिए घी की एक आहुति दी जाती है। उपांशु अर्थात् नीचे स्वर से मन्त्र पढ़े जाने के कारण इस घृताहुति का नाम

उपांशुयाग है। (४) इस के बाद स्विष्टकृत् याग है। दोनों पुरोडाशों के समस्त द्रव्य की आहुति नहीं दी जाती है, थोड़ा सा बचा कर रखा जाता है। इसी में से थोड़ा सा द्रव्य ले कर 'अग्नि स्विष्टकृत्' के लिए आहुति दी जाती है। अग्नि स्विष्टकृत् रुद्र देवता की मूर्ति है। इस रुद्र से लोग भय खाते हैं। इस के तीर से सभी डरते हैं। यहां तक कि इस के नाम का साफ़ साफ़ उच्चारण करने का भी किसी को साहस नहीं होता। उग्र, भीम, कपर्दी आदि विशेषणों से ही इस के स्वभाव का परिचय मिलता है. इसे प्रसन्न करने के लिए कभी कभी शंकर कह देते हैं। इसी लिए वेदपन्थियों के अन्य देवताओं के साथ इस का पार्थक्य है। इस ने एक बार देवताओं के कहने पर स्वयं प्रजापति को लक्ष्य कर के बाण ताना था। देवताओं ने खुशी में इसे पशुओं का राजा बनाया था। तभी से इस का नाम पशुपति है। बहुत पहले इसे यज्ञ का भाग नहीं मिलता था, यह ज़बर्दस्ती यज्ञभाग लेता था। तभी से स्विष्टकृत याग का चलन हुआ है। स्विष्टकृत यागमें जो आहुति दी जाती है उसे रुद्रदेव ही अग्नि स्विष्टकृत मूर्ति से ग्रहण करता है। इस प्रसङ्ग में दक्षयज्ञ की पौराणिक कथा का आप के मन में उदय हुआ होगा। [५] स्विष्टकृत याग के बाद अनुयाजयाग होता है। प्रधान यागसे पहले जिसतरह प्रयाज होता है उसी तरह बाद को अनुयाज होता है। प्रयाजयाग के पांच देवता हैं, अनुयाज के तीन हैं—बर्हि, नराशंस और फिर अग्नि स्विष्टकृत्। आहुति का द्रव्य आज्य है।

प्रधान और अप्रधान दोनों तरह के यागों के सम्पादन में

कुछ साधारण नियम हैं। पहले कहा जा चुका है कि अध्वर्यु ही यागकर्त्ता है, होता तो सिर्फ़ देवताओं का आवाहन करता है। आहवनीय अग्नि मे आहुति देकर याग किया जाता है। अध्वर्युका आसन आहवनीय के उत्तर में होता है यहीं वह खड़ा रहता है। हर याग से पहले वह दाहने हाथ मे जुहू और बांये हाथ में उपभृत् लेकर वेदि के उत्तर से दक्षिण ओर चला आता है। दक्षिण ओर आकर वह अग्नीत् नाम के ऋत्विक् को आदेश करता है-'ओ श्रावय'। अर्थात् देवताओं से मन्त्र सुनने के लिए अनुरोध करो। अग्नीत् वेदि के उत्तर में काठ की तलवार लिये खड़ा रहता है। इस तलवार को स्फ्य कहते है। वह उत्तर में कहता है 'अस्तु श्रौषट्' अर्थात् देवता सुनते है। फिर अध्वर्यु होता को देवताओं के आवाहन का आदेश करता है। होता को दो मन्त्र पढ़ने होते है। पहले का नाम अनुवाक्य है, यह ऋक् मन्त्र है। इस मन्त्र से देवताओं को अनुकूल किया जाता है। दूसरे मन्त्र का नाम याज्या है-यह मन्त्र कभी ऋक् होता है और कभी यजु। यह याग का मन्त्र है-इसी लिए इस का नाम याज्या है। मान लो याग का देवता अग्नि है। होता मन्त्रपाठ से पहले 'ये यजामहे अग्निदेवम्' कह कर आरम्भ करता है, इस टुकड़े का नाम आगुः है। इसके बाद याज्या मंत्र पढ़ कर कहता है-'अग्ने वीहि वौषट्' अग्नि इसे भक्षण कर और देवता के पास पहुँचाये। वौषट् उच्चारण को ही वषट्कार कहते हैं। इस वषटकार के साथ अध्वर्यु आहुति का द्रव्य चाहे वह आज्य हो या पुरोडाश अग्नि में छोड़ देता है। यजमान अध्वर्यु को छुए रहता

है। आहुति के बाद वह त्यागमन्त्र बोलता है-इदमग्नये न मम। यह द्रव्य अग्नि को दिया गया मेरा नहीं रहा। इसे ही त्याग मंत्र कहते हैं। देवता के लिए द्रव्य त्याग करने को ही याग कहते हैं। यजमान इस तरह द्रव्यत्याग करता है। त्याग मंत्र के पढ़े जाने के बाद अध्वर्यु अग्नि के दक्षिण से फिर उत्तर में अपने स्थान पर लौट आता है। प्रत्येक याग की यह साधारण विधि है।

अभी एक बड़ी बात कहनी बाकी है। यह हविःशेष भक्षण है। हविःशेष के बिना खाये कोई भी यज्ञ सम्पूर्ण और सार्थक नहीं होता। अग्निहोत्र के प्रयोग में कुछ थोड़ा सा दूध की आहुति नहीं दी जाती, खाने के लिए थोड़ा सा बचा लिया जाता है। पूर्णमास याग में भी सब पुरोडाश की आहुति नहीं दी जाती। थोड़ा पुरोडाश बचा दिया जाता है। यजमान और ऋत्विक उसे खाते हैं। इसलिए पुरोडाश के बचे अंश को कई खंडों में बांटना होता है। एक खण्ड का नाम प्राशित्र है, इसे ब्रह्मा खाता है। एक खण्ड का नाम षडवत्त है, यह अग्नीत् का हिस्सा है। एक खण्ड के चार भाग करके अध्वर्यु, होता, ब्रह्मा और अग्नीत् इन चारों में से प्रत्येक भक्षण करता है। पुरोडाश के दो खण्ड और रख दिये जाते हैं। अनुष्ठान समाप्ति पर ब्रह्मा और यजमान इन खण्डों को खाते हैं। पहले और दूसरे पुरोडाश के कुछ अंश पर घी लपेटा जाता है—इस अंश को इडा कहते हैं। यजमान और चारों ऋत्विक इस इडा को खाते हैं। यह इडाभक्षण एक खास काम है। इस समय हम इस विषय में कुछ नहीं कहेंगे। पर आप इस इडा को याद

रखें। बाद को इस के विषय में बहुत सी बातें कहनी हैं। इडा-भक्षण का तात्पर्य यदि न समझा तो यज्ञ का तात्पर्य ही न समझा। इस इडा का एक अंश होता अलग भक्षण करता है। इस अंश का नाम अवान्तर इडा है। हविःशेष का यह काम स्विष्टकृत् याग के बाद और अनुयाज याग से पहले हो जाता है। सिर्फ़ ब्रह्मा और यजमान का भाग यज्ञसमाप्ति के लिए रक्षित रहता है।

अनुयाज याग के साथ पूर्णमास यज्ञ के प्रधान अनुष्ठान एक तरह से पूर्ण होगये, अब हम समाप्ति तक पहुँच गये हैं प्रस्तर नामक मुट्ठी भर कुशाओं की बात आप को याद होगी। एक मुट्ठी कुशाओं को बांध कर वेदिके ऊपर रख दिया था. इन्हीं का नाम प्रस्तर है। इन्हें मुट्ठी भर कुशा ही न समझिए। इन में यजमान के शरीर की कल्पना की गई है। अनुयाज याज के बाद प्रस्तर आहवनीय अग्नि में फेंक दिया जाता है। प्रस्तर जब आग में जलने लगता है तब यजमान मानो स्वर्ग में पहुंच जाता है। प्रस्तर के फुंक जाने के बाद मानो यजमान स्वर्ग में पहुंच कर देवताओं के साथ मिल गया। प्रस्तर को फूंकने के समय अध्वर्यु की आज्ञा लेकर होता कुछ मंत्रोंका पाठ करता है। इस का नाम सूक्तवाक है। प्रस्तर के जल जाने पर आशी-र्वादसूचक कुछ और मंत्र पढ़े जाते हैं। इसे शंयुवाक कहते हैं। आप को खयाल होगा यज्ञ के आरम्भ में तीन समिधाओं से आहवनीय का घेरा बनाया गया था। इन समिधाओं को परिधि कहते हैं। मनुष्य होता ने देवहोता अग्नि का आहवनीय में आवा-हन किया था यह भी आप को याद होगा। यह परिधि उस

देवहोता का शरीर है। अब वह परिधि भी अग्नि में फेंक दी जाती है। देवहोता यज्ञ-स्थल से चले जाते हैं। इस समय अध्वर्युविश्वेदेवा के लिए घी से होम करते हैं, इसे संस्राव होम कहते हैं, यह याग नहीं-होम है। इस होम के साथ ही यजमान की ओर से तो अनुष्ठान की समाप्ति होजाती है।

अब तक आप की बड़ी धैर्य्यच्युति हुई। हम भी यहीं पर इस विषय को समाप्त कर के आप को छुट्टी दे देते किन्तु याज्ञिक आप को अभी छोड़ना नहीं चाहते। यजमान के पक्ष में तो यज्ञ समाप्त हो गया किन्तु यजमानपत्नी के सम्बन्ध में अभी वह बाक़ी है। पहले कहा जा चुका है कि गार्हपत्य अग्नि के साथ यजमान की पत्नी का विशेष सम्बन्ध है। गार्हपत्य के पास वह अब तक बैठी रही है। अब तक जो याग हुए हैं वे सब आहवनीय में ही हुए हैं। गार्हपत्य में कोई याग नहीं हुआ। अब ब्रह्मा को छोड़ कर बाक़ी तीन ऋत्विक यजमानपत्नी के पास आकर कई आहुतियां देते हैं-गार्हपत्य अग्नि में आहुति का द्रव्य आज्य होता है। देवता ये हैं -सोम, त्वष्टा, देवपत्नियां और अग्निगृहपति। अग्नि गृहपति गार्हपत्य अग्नि का देवता है। अग्निगृहपति को यज्ञ का भाग न मिले गृहिणी इसे किस तरह सहसकती है और देवपत्नियों को भी वह क्यों वंचित रहने देगी? प्रधान याग के बाद जिस तरह हविःशेष खाया गया है उसी तरह यहां भी यजमानपत्नी हविःशेष चखती है। हां, हविःशेष भक्षण के बाद सूक्तवाक नहीं पढ़ा जाता शंयुवाक पढ़ा जाता है और संस्राव होम भी किया जाता है। इस याग का नाम पत्नी-संयाग है।

दक्षिणाग्नि को अभी तक कोई आहुति नहीं मिली। अध्वर्यु अब दक्षिण अग्नि में घी का होम करते हैं। पुरोडाश बनाते समय मिट्टी का थोड़ा अंश जो बचा रक्खा था वह विश्वेदेवा के लिए अग्नि में डाला जाता है। देव होता के आवाहन पर जो देवता यज्ञभाग पाने के लिए आये थे वे अभी तक यज्ञस्थल से गये नहीं हैं। अध्वर्यु वहां से लौट कर उन सबके लिए आहवनीय अग्नि में थोड़ा आज्य छोड़ता है, तब वे चले जाते हैं इस का नाम समिष्ट यजुहोम है। वेदी के ऊपर यज्ञ का सामान रखने के लिए जो कुशायें बिछाई गई थीं वे भी आहवनीय में फेंक दी जाती हैं। यज्ञ के आरम्भ में प्रणीता नाम का जो जल यज्ञरक्षा के लिये आहवनीय से पूर्व की ओर रखा गया था यज्ञ की समाप्ति पर वह जल वेदी पर उलट दिया जाता है। पुरोडाश के चावलों की भूसी आदि जो चीज़ें बची हैं वह राक्षसों का अंश है। इस से वे खुश हो जाते हैं। राक्षसों के लिए वे फेंक दी जाती हैं।

अब सचमुच यज्ञ समाप्त होगया। अब यजमान को देवत्व मिलगया, वह तो अब प्रधान देवता विष्णु के पद का प्रार्थी हो गया। आप जानते हैं विष्णु ने तीन चरणों से तीनों लोकों पर अधिकार जमा रक्खा है। सारा वैदिक साहित्य विष्णु के इस तीन पाद के आक्रमण के माहात्म्य से भरा हुआ है। इसी का अनुकरण करने के लिए यजमान यज्ञस्थल में तीन पाँव पूर्व की ओर आहवनीय तक चलता है इसका नाम विष्णुक्रमप्रक्रमण है। पूर्व दिशा में देवताओं का स्थान है, यजमान पूर्व दिशा की ओर देखकर कहता है-मैं ज्योति में पहुँच गया हूँ, ज्योति

के साथ मैं मिल गया हूँ। फिर यजमान सूर्य्य और गार्हपत्य अग्नि का ध्यान करके प्रार्थना करता है—हे गृहपति अग्नि, मैं तुम्हारे द्वारा अच्छा गृहपति होऊँ; पुत्र के नामका उल्लेख करके कहता है-मेरा यह पुत्र इस वीरकर्म का क्रम से खूब विस्तार करे। इस के बाद आहवनीय अग्नि का उपस्थान न करके यज्ञ करने के पहले दिन जो व्रत ग्रहण किया था उसे विसर्जन करता है। विसर्जन के बाद यजमान और ब्रह्मा यज्ञ-शाला से बाहर आकर पुरोडाश के उस भाग को जो उन के लिए रक्षित था-खाते हैं। अन्त में ब्रह्मा आहवनीय में समिध् डालकर पूर्णमास इष्टि को समाप्त कर देता है। यज्ञान्त में ऋत्विक् आदि को दक्षिणा दी जाती है। पूर्णमास यज्ञ प्रत्येक गृही का अवश्य कर्त्तव्य कर्म्म है। धनी दरिद्र सभी को यह करना होता है। लम्बी चौड़ी दक्षिणा हो तो यह काम चल नहीं सकता। यज्ञ के आरम्भ में दक्षिणाग्नि में चार ऋत्विकों के खाने लायक भात चढ़ा दिया जाता है। वह उस दक्षिणाग्नि में ही पकता रहता है, बस यह भात ही दक्षिणा है यज्ञ समाप्त होजाने पर ऋत्विक् इस भात को ही खालेते हैं। इतने ही से यज्ञ दक्षिणान्त हो जाता है।

पूर्णमास यज्ञ का विवरण दिया गया। इष्टियाग क्या चीज़ है इस से आप यह समझ गये होंगे। अब पशुयाग की बात सुनाने की इच्छा है। पशु याग के बहुत भेद हैं। उनमें एक पशुयाग अवश्य कर्त्तव्य है उसका नाम निरूढ़ पशुबंध है। हर साल वर्षाकाल में मावस या पूनो को यह याग किया जाना चाहिए। किसी किसी के मत में साल में दो बार

करना चाहिए [उत्तरायण और दक्षिणायन संक्रान्तियों पर] यह पशुयाग अन्य जितने पशुयाग हैं उनकी प्रकृति नमूना है। इस का विवरण देने से सभी पशुयागों का कमोबेश हाल मालूम हो जाता है।

इष्टियाग में चार ऋत्विकों की आवश्यकता होती है. अध्वर्यु होता, ब्रह्मा और अग्नीत्। पशुयाग में और दो आदमियों की आवश्यकता होती है एक अध्वर्यु के सहकारी की जिसे प्रतिप्रस्थाता कहते हैं। एक होता के सहकारी की जिसे मैत्रावरुण कहते हैं। इन छः ऋत्विकों के साथ पशुयाग आरम्भ किया जाता है। इष्टियाग में सामान रखने के लिए जो वेदि होती है उस के पश्चिम में गार्हपत्य और पूर्व में आहवनीय होती है। पशुयाग में और एक वेदि बनानी पड़ती है। इसका नाम पाशुक वेदि है। आहवनीय अग्नि के भी पूर्व में यह वेदि बनाई जाती है। इस वेदि के ऊपर और एक वेदि बनानी पड़ती है उसे उत्तर वेदि कहते हैं। यज्ञशाला की उत्तर दिशा में गढ़ा खोद कर जो मिट्टी निकाली जाती है उसी से यह वेदि बनाई जाती है उस गढ़े को चात्वाल कहते हैं चात्वाल के पास पाशुकवेदि के कूड़े कर्कट का ढेर रहता है इस स्तूपाकार ढेर को उत्कर कहते हैं। उत्तर वेदि के मध्यस्थल को नाभि कहते हैं। आहवनीय से अग्नि लेकर इस नाभि में रखी जाती है। उस अग्नि में फिर और नई आग रखी जाती है अरणि घिसकर वह नई अग्नि पैदा की जाती है। नाभि में जब ये दोनों अग्नियां मिल जाती हैं। तब यह अग्नि ही आहवनीय समझी जाती है। पुरातन आहवनीय अपनी मर्यादा खोकर

गार्हपत्य का काम करती हैं। पाशुक वेदि के ऊपर पशुयाग में जिस सामान की ज़रूरत होती हैं वह और आहुति का द्रव्य रक्खा जाता है।

—०—

पशु-याग।

पशु को बाँधने के लिए यूप की ज़रूरत होती है। यूप यानी लकड़ी का खूँटा अध्वर्यु बढ़ई के साथ स्वयं बाहर जाकर पेड़ से लकड़ी काट लाता है। उसे ठीक करके अठ कोण खूँटा बनाया जाता है। कम से कम वह पांच हाथ लंबा होता है एक हाथ मट्टी के नीचे गड़ा रहता है। पाशुक वेदि के पूर्व में उस का स्थान होता है। इस अठपहलू खूँटे के सिर पर एक मुकुट होता है उसे चषाल कहते हैं। यूप पर घी चढ़ाया जाता है। इस कर्म का नाम है यूपाञ्जन। उस में रस्सी बाँधी जाती है जिसे रशना कहते हैं। रशना में लकड़ी का एक टुकड़ा डाला जाता है जिसे स्वरू कहते हैं। ये सब काम अध्वर्यु अपने हाथ से करता है और होता प्रत्येक कर्म के अनुकूल ऋक् मन्त्र पाठ करता है। इस तरह यूप पशु बाँधने योग्य होता है।

बाँधने से पहले पशु को दो कुशाओं का स्पर्श कराया जाता है। इस का नाम उपाकरण है। पशु के दोनों सींगों में रस्सी बाँधी जाती है और उस रस्सी को रशनामें जोड़ देते हैं। इस तरह के पशु-बंधन का नाम पशु-नियोजन है। पशु के सिर पर घी मला जाता ह।

नियोजन के बाद याग शुरू होता है। याग का आरम्भ बहुत करके इष्टि-याग की तरह है । उत्तर वेदि की नाभि में जो नई आहवनीय अग्नि स्थापित हुई है सामिधेनी मन्त्र के साथ उस में समिधा डालकर उसे जलाया जाता है, बाद को उसी अग्नि में आघार होम करके देवहोता अग्नि का वरण और फिर मनुष्य होता का वरण इष्टि-याग की तरह ही होता है। वरण पाकर देवता यज्ञ-स्थल में आजाते हैं। प्रधान याग से पहले होने वाला प्रयाज याग अब आरम्भ होता है। इष्टियाग में पांच प्रयाज होते हैं पर पशु याग में इनकी संख्या ग्यारह है। इनके देवता भी ग्यारह हैं। इन के पांच देवता तो मालूम ही हैं, उन्हें छोड़ कर और छः देवता पशुयाग में प्रयाज आहुति पाते हैं। इन सब के नाम क्रम से ये हैं—(१) समिद्, (२) तनूनपात अथवा नराशंस (३) इडः (४) बर्हिः (५) दुरः (६) उषासानक्ता (७) दैव्यौ होतारौ (८) तिस्रो देव्य. (९) इडः, सरस्वती और भारती-ये तीन देवियां। ये तीनों एक हैं और एक ही तीन हैं इन तीनों देवताओंकी बात आप याद रक्खें, इनके विषय में बहुत कुछ कहना है (९) त्वष्टा (१०) वनस्पति (११) स्वाहाकार। प्रत्येक प्रयाज याग से पहले मैत्रावरुण का आदेश पा कर होता

याज्या मन्त्र पढ़ता है। पशुयज्ञ में प्रयाज याग के याज्या मन्त्र में कुछ विशेषता है। इन याज्य मन्त्रों का नाम आप्री मन्त्र है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए इन मन्त्रोंका व्यवहार होता है इस लिए इन मन्त्रों को आप्री मन्त्र कहते हैं। ऋग्वेद संहिता में अनेक आप्रीसूक्त हैं।प्रत्येक सूक्त में इन ग्यारह देवताओं के लिए ग्यारह आप्रीमन्त्र होते हैं। एक एक ऋषि का प्रचारित एक एक सूक्त है। कोई वासिष्ट का है, कोई विश्वामित्र का है, कोई जमदग्नि का है इत्यादि। यजमान जिस ऋषि के गोत्र में उत्पन्न होता है उसी ऋषि के सूक्त से उसके यज्ञ में आप्रीमन्त्र पढ़े जाते हैं। इस लिए भिन्न भिन्न यजमानों के प्रयाज याग में याज्यामन्त्र या आप्रीमन्त्र भिन्न भिन्न होते हैं। ग्यारह प्रयाजों में पहली दस आहुतियों का द्रव्य आज्य है। अन्तिम प्रयाज में आज्याहुति नहीं होती। उसमें पशु की वपा की आहुति दी जाती है। पेट के ऊपर नाभि के पास की चर्बी का नाम वपा है। इस वपा से अन्तिम प्रयाज के देवता स्वाहाकृति के उद्देश से याग किया जाता है। इस लिए पहले दस प्रयाजों के सम्पन्न होने पर अन्तिम प्रयाज से पहले ही पशुवध का आयोजन करना होता है।

जो व्यक्ति पशुवध करता है उसे शमिता कहते हैं। पाशुक वेदि के उत्तर में चात्वाल के पास पशुवध का स्थान होता है। उस स्थान को शामित्र देश कहते हैं। उसी जगह पशु के अंगों को पकाने के लिए आग जलाई जाती है। इस अग्नि को शामित्र अग्नि कहते हैं। एक ऋत्विक् का नाम अग्नीत् है इष्टि-याग में भी यह होता है। यह उल्मुक अर्थात् जलती हुई

आग लेकर पशु के चारों ओर घुमा देता है । मतलब यह है कि राक्षस पशु पर आक्रमण न कर सकें, राक्षस आग से डरते हैं । अग्नि घुमाने के कर्म को पर्यग्निकरण कहते हैं । इसी समय होता पशु-वध के लिए शमिता को नियुक्त करता है । उस समय एक मन्त्र पढ़ा जाता है । उस के अर्थ में दो एक ऐसी बातें हैं जो आप के लिए कुतूहल उत्पन्न कर सकती हैं । मंत्र में कहा गया है--इस पशु के वधकर्म में इस की माता अनुमति दे, पिता अनुमति दे सहोदरभ्राता अनुमति दे । इस के मित्र और दल के अन्य पशु भी अनुमति दें. फिर कहा जाता है—इस के पांव उत्तर दिशा का आश्रय लें, आंख सूर्य का आश्रय लें, प्राण वायु का, जीवन अन्तरिक्ष का, कान सब दिशाओं का और शरीर पृथ्वी का आश्रय ले, अन्त में कहा जाता है-हे वधकर्त्ता, इस पशु को हनन कर, हनन कर, हनन कर-अपाप, अपाप, अपाप । इस कर्म्म में जो सुकृत है वह मुझे प्राप्त हो जो दुष्कृत है वह दूसरों को मिले । मन्त्र-पाठ के बाद हाथ में आग लिये अग्नीत् आगे चलता है शमिता पशु की रस्सी पकड़ कर पीछे पीछे चलता है । उस के पीछे प्रति-प्रस्थाता, अध्वर्य्यु और यजमान चलते हैं । शामित्र देश में अर्थात् वध स्थान में पहुँच कर अध्वर्यु भूमि पर एक तिनका फेंक देता है, यजमान और ऋत्विक् सब वहां से लौट कर और मुंह मोड़ कर बैठ जाते हैं जिस से कि हत्या का कर्म न देखें । वध के तरीक़े का न बताना ही अच्छा था । सांस घोट कर वध किया जाता है । इस तरह वध करने को संज्ञपन कहते हैं । वध के बाद यजमान, यजमान की स्त्री और अध्व

र्य्यु जल डाल कर पशु को धोते हैं। अध्वर्युं पेट चीर कर वपा बाहर निकालता है उस का सहकारी प्रतिप्रस्थाता लकड़ी के दो टुकड़ों से उस को लेकर शामित्र अग्नि पर तपाता है, फिर उसे उत्तर वेदि की नाभि में रखी अग्नि पर रख देता है। अग्नि की गर्मी से वपा गल कर बूँद बूँद होकर आग पर गिरती है। अध्वर्य्यु साथ साथ वपा पर घी छोड़ता जाता है। इसी वपा का कुछ अंश यथाविधि आप्रीमन्त्रपाठ के बाद अग्नि में डाल कर अन्तिम प्रयाजयाग सम्पन्न किया जाता है। वपा का अवशिष्ट अंश प्रधान याग के लिए रख दिया जाता है।

हम निरूढ़ पशु-बन्धनामक अवश्य कर्त्तव्य पशुयाग की बात कह रहे हैं। इस यज्ञ के प्रधान देवता इन्द्र और अग्नि हैं। प्रयाज याग के बाद अध्वर्य्यु उनके लिए पहले वपाहुति देता है। वपाहुति के बाद पुरोडाश आहुति और फिर पशु के अङ्गों की आहुति दी जाती है। पूर्णमास याग में आहुति का प्रधान द्रव्य पुरोडाश है। पशु-याग की आहुति का द्रव्य पशु की वपा और उस का मांस है। किन्तु पशु-मांस के साथ पुरोडाश की आहुति न देने से पशु याग भी पूरा नहीं होता। इष्टि-याग में अध्वर्य्यु जिस तरह पुरोडाश तयार करता है यहां भी उसे उसी तरह पुरोडाश तयार करना होता है। वपा की आहुति के बाद एक ओर शामित्र अग्नि में पशु के अङ्ग प्रत्यङ्ग पकते रहते हैं, दूसरी ओर अध्वर्य्यु पुरोडाश याग करता रहता है।

पशु के सब अङ्ग मेध्य अर्थात् आहुति के योग्य नहीं हैं।

हृदय जीभ आदि ग्यारह अङ्ग प्रधान देवताओं की आहुति के योग्य हैं। पशु का रक्त राक्षसों का हिस्सा है वह उत्कर अर्थात् यज्ञशाला के बाहर गढ़े में फेंक दिया जाता है। शमिता ही छुरी से पशु के अंग काटता है और वही पशुमांस को हांडी में रख कर पकाता है।

पुरोडाश की आहुति के हो चुकने पर शमिता खबर देता है कि पशु के अंग पक गये हैं। अध्वर्यु आकर प्रधान देवता इन्द्र और अग्नि के लिए पशु के अङ्गों की आहुति देता है। मैत्रावरुण अनुवाक्य पाठ करता है और स्वयं होता याज्या-पाठ करता है। मांस पकाते समय कुछ चर्बी हांडी के ऊपर आजाती है। उस में दही और घी मिला कर वनस्पति देवता के लिए इस समय उसकी आहुति देने की प्रथा है।

प्रधान याग के बाद स्विष्टकृत् याग होता है। जैसा कि पहले कहा आचुका है यह रुद्र देवता का प्राप्य है। पशु के कुछ अंग इस के लिए अलग रक्खे रहते हैं।

फिर हविश्शेष भक्षण होता है। ऋत्विक् अपना अपना निर्दिष्ट भाग भक्षण करते हैं और यजमान छहों ऋत्विकों के साथ इड़ा-भक्षण करता है। पूर्णमास-याग के प्रसङ्ग में हम ने कहा था कि इड़ाभक्षण का कुछ गम्भीर तात्पर्य है और उस तात्पर्य को आगे चल कर बतायँगे। बिना उसे जाने यज्ञ का तात्पर्य ही समझ में न आयगा।

प्रधान याग समाप्त होगया। इस के बाद अनुयाज होगा। इष्टि याग में अनुयाज की संख्या तीन थी किन्तु पशुयाग में ग्यारह है। प्रयाज की संख्या भी ग्यारह है। प्रयाज के

अधिकांश देवता ही अनुयाज के देवता हैं। वही मिले घी की इन ग्यारह देवताओं को आहुति दी जाती है। अध्वर्यु आहुति देता है, उस का सहकारी प्रतिप्रस्थाता दूसरी ओर आग जला कर पशुमांस से उपयाज होम करता है। यह उपयाज होम पशुयाग में ही होता है, इष्टियाग में नहीं। यह याग नहीं है, सिर्फ़ होम है। याग और होम का पार्थक्य पहले बता चुके हैं। खूँटे में स्वरु नामक जो लकड़ी का टुकड़ा बांधा गया था वह इस समय अग्नि में डाल दिया जाता है।

इस के बाद पत्नि-संयाज होता है। यजमान-पत्नी इसे गार्हपत्य अग्नि में सम्पन्न करती है। आहुति का द्रव्य, पशु की पूछ होती है। बस यहां आकर यज्ञ समाप्त हो जाता है। सूक्त वाक, शंयुवाक पाठ से लेकर यजमान के विष्णुक्रम प्रक्रमण और व्रतविसर्जन तक यागसमाप्ति के सब काम इष्टियाग की तरह होते हैं। उन के पुनरुल्लेख की ज़रूरत नहीं।

सब श्रौत यज्ञों को इष्टियाग, पशुयाग और सोम याग इन तीन प्रधान यागों में बांटा जाता है। सोमयाग की कथा फिर सुनायेंगे। इष्टि और पशुयाग का आभास दिया गया। इतने ही से आप की बहुत कुछ धैर्य्य-च्युति होगई है। इष्टि-याग और पशुयाग के वर्णन को सुन कर आप की उन पर श्रद्धा हुई है या अश्रद्धा-इस का हम निर्णय नहीं कर सकते। आप की श्रद्धा हो या न हो पर ये सब काम वेदपन्थी समाज में एक समय बड़ी श्रद्धा से किये जाते थे। आप मज़ाक से कहेंगे कि ये समस्त अनुष्ठान Irrational हैं। मनुष्य की

प्रथा, मनुष्य की सुस्थ विचार बुद्धि कोई भी इन का समर्थन नहीं कर सकती। यह हो सकता है। अँगरेज़ी में जिसे 'रिलिजन' कहते हैं वह सब तरह से reason (तर्क के इलाक़े से बाहर है। सभ्य, असभ्य सभी समाजों के मनुष्य इस तरह के अनुष्ठानों में श्रद्धा रखते हैं। भेद सिर्फ़ मात्रा में है। अतएव जो मानवतत्त्व की आलोचना में प्रवृत्त हुए हैं उन्हें मानव प्रकृति के इस अंश की आलोचना को छोड़ना नहीं चाहिए। इसे आप मनुष्य की दुर्बलता भले ही कह सकें किन्तु पाशवता नहीं कह सकते। क्योंकि पशुओं में इन अनुष्ठानों का चलन नहीं है पशुओं में यह दुर्बलता नहीं है। कोई पशु किसी 'रिलिजन' का आश्रय नहीं लेता इस लिए यह मानविकता ही है पाशविकता हर्गिज़ नहीं है।

देवता तत्त्व के सम्बन्ध में आजकल एक मत ख़ूब ज़ोरों पर है, इसे Animism कहते हैं। पण्डितों का मत है कि इसी Animism से सब 'रिलिजन' निकले हैं। असभ्य मनुष्य सारी पृथ्वी को देवतामय देखते हैं। सब चीज़ों का एक एक अधिष्ठातृ देवता है। इन देवताओं का शरीर यद्यपि सूक्ष्म है तथापि राग द्वेष आदि विषयों में ये मनुष्य की तरह ही हैं। इन में शक्ति मनुष्य से कहीं अधिक है। संसार की बहुत सी घटनायें इन्हीं के इशारे पर होती हैं। मनुष्य का भला बुरा बहुत कुछ इन्हीं के हाथ में है। वैज्ञानिक लोग जगत् के व्यापार को यन्त्र के रूप में देखते हैं। यन्त्र के भीतर ख़याल नहीं है। वह कुछ निर्दिष्ट नियमों के अधीन है। अवैज्ञानिक और असभ्य मनुष्य नियमों को नहीं जानता, वह सब कहीं

देवता को ही देखता है। इसे ही Animism कहते हैं ।विज्ञान-विद्या की उन्नति के साथ मनुष्य इस Animism से क्रमशः छूट जाता है। छूटता क्रमशः है,एक साथ नहीं । आप जानते हैं सौर जगत् में ग्रह और उपग्रहों के निर्दिष्ट नियम हैं । न्यूटन से पहले किपलर ने इन नियमों का आविष्कार किया था इस लिए विज्ञान के इतिहास में किपलर का स्थान बहुत ऊँचा है।यहां तक कि यदि किपलर न होता तो न्यूटन भी अपनी योग्यता शायद न दिखासकता । किन्तु किपलर साहब भी Animism के उपद्रव को दूर नहीं कर सके । ग्रह क्यों अपने निर्दिष्ट स्थान में घूमते हैं इस के उत्तर में किपलर कहते हैं कि प्रत्येक ग्रह का एक एक अधिष्ठातृ देवता है वही अपने वाहन ग्रह को इस तरह घुमाता है । यही Animism है । इन देवताओं में किस की कितनी शक्ति है मालूम नहीं । सब को ही .खुश रखना होता है, देवता को .खुश करने की चेष्टा से 'रिलिजन' की उत्पत्ति हुई है । पण्डित लोग कहते हैं यहीं से पूजा अर्चना और याग यज्ञ निकले हैं । इनके मूल में मनुष्य का स्वार्थ छिपा हुआ है । सभ्यता की वृद्धि के साथ उन में बड़े बड़े उद्देश बताये जाते हैं। सभ्यता की वृद्धि होने पर पुराने अनुष्ठानों का त्याग नहीं किया जाता किन्तु उन में नये उद्देश का आरोप कर दिया जाता है । ई० बी० टायलर साहब एक प्रसिद्ध मानवतत्त्ववेत्ता हैं और Animism Theory के प्रसिद्ध प्रचारक हैं । सभ्य असभ्य सब जातियों के अनुष्ठानों का वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण करके उन्होंने इस विषय की चर्चा की है । वह कहते हैं- कहना पड़ता है

धर्मानुष्ठानों के मूल में किसीतरह का Ethical Element नहीं है। यदि है तो वह Scanty और rudimentary है। किन्तु उन्नत समाज में आकर वही धर्म्मानुष्ठान का Vital point हो जाता है।

टायलर साहब एक जगह यज्ञ के सम्बन्ध में कहते हैं:—Sacrifice has passed in the course of religious history into transformed condition, not only of the rite itself, but of the intention with which the worshipper performs it. अनुष्ठान कुछ हो पर यह intention बड़ी चीज़ है। जिस उद्देश से कर्म किया जाता है धर्म्म के इतिहास में वही खास चीज़ है। टायलर साहब ने धर्म्म कर्म के अनुष्ठानों के विकास में तीन दर्जे क़ायम किये हैं। तीन दर्जों के सम्बन्ध में तीन सिद्धान्त स्थिर किये हैं। पहली Gift theory दूसरी Homage theory और सब के ऊपर तीसरी Abnegation theory अब हम इन तीनों सिद्धान्तों को अलग अलग समझने की चेष्टा करते हैं। Gift theory के मत में जितने धर्म्मानुष्ठान हैं सभी स्वार्थ-मूलक हैं। देवता जिस चीज़ को पाकर ख़ुश हो वही उसे दो। पाद्य, अर्घ्य, धूप, दीप, वस्त्र अलङ्कार आदि से मनुष्य प्रसन्न होता है, देवता भी प्रसन्न होते हैं। टायलर साहब ने समस्त पृथ्वी से ऐसे अनेक दृष्टान्त दिये हैं। हमारे देश में भी इस तरह के दृष्टान्तों का अभाव नहीं है। देवता को जो कोई चाहे कुछ देकर प्रसन्न रख सकता है। पेट भरने की व्यवस्था से तो सभी प्रसन्न होजाते हैं। नहीं तो यहाँ के

लोग साहब लोगों को दावत देने के लिए इतने व्यस्त क्यों होते? देवताओं को भोजन देने की व्यवस्था की जाती है। पशुमांस बहुत से देवताओं को पसन्द है, किस देवता को कौन पशु पसन्द है, प्रत्येक यज्ञ में यह बता दिया गया है। याज्या मन्त्र से देवता को बुला कर जिस समय कहा जाता है, अग्ने वीहि वौषट् अर्थात् अग्नि, तुम खाओ और देवताओं को भी खाना पहुँचाओ। 'वह्' धातु से वौषट् बना है जिस का अर्थ पहुंचाना है। यह हुई टायलर साहब की Gift theory इस के बाद Homage theory का नम्बर है। यहां देवता के लाभ के लिए देवता को उपहार नहीं दिया जाता, जो उपहार दिया जाता है देवता उसे चाहे न भी लें, किन्तु हम उसे देने के लिए तयार हैं यह बता कर हम अपनी अधीनता या वश्यता का परिचय देते हैं। इस का नाम homage है। इस देश में राजा और ज़मींदार को नज़र देने की रीति है। राजा नज़र का रुपया ग्रहण कर लेते हैं या उसे छू कर लौटा देते हैं। प्रजा इतने ही से कृतार्थ होजाती है। देवता भी उस चीज़ को ग्रहण करें या न करें किसी द्रव्य को उपहार में देकर या उपहार का अभिनय दिखाकर देवताकी वश्यता को हम मान लेते हैं। इस अनुष्ठान में एक तरह का धर्म्मभाव है। एक तरह का Ethical element है। जहोवा के मन्दिर में यहूदी बड़े आडम्बर से पशु की बलि देते हैं। मन्दिर का सहन गौवों और भेड़ों से भरा रहता है। ऊँची वेदि के ऊपर आग सदा जलती रहती है। वेदि के नीचे नाली में ख़ून की धार बहती रहती है। बड़ी धूम होती है। यहूदी

अपने अहोवा को बड़ा देवता मानते हैं। वे ऐसा नहीं समझते कि इतने पशु उस के पेट की खातिर काटे जाते हैं। उन की एक प्रधान पूजा का नाम है-Sin offering यहूदी सदा अपने को पापी समझते हैं। उन्हें जो कुछ दुःख मिलते हैं उन्हें वे अपने पापों का फल समझते हैं। इस Sin offering से वे अपने पापों को स्वीकार करते हैं और उन को धोने की थोड़ी सी चेष्टा। यह उपहार देवता को बतौर रिश्वत के नहीं दिया जाता बल्कि इसे देकर उनके सामने अपनी वश्यता या दीनता स्वीकार की जाती है। इसके भी ऊपर Abnegation theory है। Abnegation शब्द का अर्थ है स्वार्थत्याग। यहां स्वार्थ का उद्देश नहीं है, बल्कि उस के विपरीत है। इस के भीतर मनुष्य के धर्मभाव के फिर दर्शन होते हैं। देवता का लाभ हो या न हो, देवता फल दे या न दे, हमें कुछ त्याग करना ही चाहिए। हमें अपना कर्त्तव्य कर देना चाहिए कर्म-फल पर दृष्टि रखने का हमें अधिकार नहीं है। ऐसे स्थलों पर धर्मानुष्ठानों में देवताओं की उदरपूर्त्ति की चेष्टा नहीं की जाती, तो भी ऐसा कोई द्रव्य दिया जाता है, जिससे हमारे स्वार्थ-त्याग का परिचय मिल जाय। जिसके त्याग में हमारी बड़ी हानि हो। बलि की बात आप जानते ही हैं। इस समय भी कुछ समाजों में नरबलि का प्रचार है। एक समय मालूम होता है सभी समाजों में इस का प्रचार था। जो नर-मांस को मज़े से खाते हैं वे देवता को भी नर मांस खिला-येंगे इस में सन्देह ही क्या है। किन्तु जो नर-मांस नहीं खाते हैं उन में भी नरबलि का प्रादुर्भाव देखा जाता है। यहूदी, रोम,

ग्रीक, सभी एक समय नरबलि करते थे । यह बात तो आप जानते ही हैं । आईफिजिनिया का दृष्टान्त, लेफ़थर की लड़की का इतिहास भी आप जानते ही हैं । फिनिक आदि सेमिटिक् जातियां ख़ूब सभ्य थीं, पर उन में भी इस भीषण प्रथा का ख़ूब प्रचार था। देवता को देने के लिए बड़े घर का लड़का चुना जाता था . पिता के एकमात्र पुत्र को पसंद किया जाता था। रोमराज्य का जिस समय ख़ूब पराक्रम था उस समय सम्राट् एलागावेलास ने नरबलि का प्रचार फिर से किया था। राज्य के बड़े बड़े घरानों के लड़कों को लाकर उन की बलि दी जाती थी। कैसा भीषण और लोमहर्षङ्कर व्यापार है। किंतु इस के भीतर कुछेक धर्मभाव भी है। देवता नरमांस पसन्द करते हैं यह मतलब नहीं। तात्पर्य्य त्याग से है। जो सब से अधिक मूल्यवान् है, जो सब से अधिक प्रिय है उसे बलि दिया जाय तभी तो त्याग है। आपने शुनःशेफ की वैदिक आख्यायिका सुनी होगी। ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण में यह आख्यायिका है। इक्ष्वाकु वंश के राजा हरिश्चन्द्र के सौ स्त्रियां होने पर भी पुत्र नहीं हुआ। उन्होंने वरुण से प्रतिज्ञा की कि यदि आप पुत्र देंगे तो मैं उसे आप पर ही चढ़ा दूँगा। वरुण के वर से पुत्र हुआ। किन्तु राजा पुत्र को न दे सका. कुछ न कुछ बहाना करने लगा। जब वह लड़का बड़ा हुआ तो वह वन में चला गया। देवताओं के क्रोध से राजा को पेट का रोग हो गया। पुत्र रोहित को वन में एक ब्राह्मण के दर्शन हुए, उस के तीन पुत्र थे। रोहित ने सोचा कि यदि इस ब्राह्मण के एक पुत्र को ख़रीद कर पिता के पास भेज दूँ तो मेरे बदले उसे लेकर ही

वरुण ख़ुश होजायंगे। इसका नाम निष्क्रय है। तीन बेटों में से बड़े को तो उन का बाप देने को राज़ी न हुआ। छोटे को मां ने न दिया अन्त में बिचारे शुनःशेफ को रोहित ने खरीद लिया। राजा को जब यह शुनःशेफ रूप पशु मिल गया तब उन्होंने यज्ञ का काम शुरू कर दिया। यज्ञ में पर्य्यग्निकरण तक होगया, किन्तु शुनःशेफ को वध करने के लिए कोई आदमी नहीं मिला। नरपशु के वध के लिए कोई राज़ी न हुआ। शुनःशेफ का पिता अजीगर्त्त भी मौजूद था। उसने धन लेकर पुत्रको बेचा था अब थोड़ा सा धन पाकर वह उसे वध करने के लिए भी तयार होगया। पुत्र उस समय निराश होकर देवताओं को पुकारने लगा। अनेक देवताओं के लिए उसके मुँह से ऋग् मन्त्र बाहर होने लगे। ये मन्त्र ऋग्वेद संहिता के पहले मण्डल में मिलते हैं। देवता ख़ुश होगये, शुनःशेफ का बन्धन खोल दिया गया अजीगर्त ने कहा—बेटा शुनःशेफ आ, मेरे पास आ। ऋत्विगों में विश्वामित्र भी थे। उन्हों ने शुनःशेफ को गोद में लेकर कहा—शुनःशेफ तुम इस पिशाच बाप के पास मत जाना, मैं तुम को पुत्रकी तरह रखूंगा। मेरे पुत्रों में तुम सब से श्रेष्ठ होगे। शुनःशेफ के मुँह से इस से पहले ही ऋग् मन्त्र निकल चुके थे, इससे उसका नाम ऋषि देवरात हुआ। विश्वामित्र के अनुग्रह से वह जन्हु वंश का राजा और गाधि वंश का दैव कर्म्मों का अधिकारी हुआ, उस के कारण दोनों वंशों का गौरव बढ़ा।

अब प्रश्न यह है कि वेदपन्थी समाज में उस समय—जिस समय की ये बातें हैं—नर-यज्ञ प्रचलित था या नहीं?

शुनःशेफ के उपाख्यान को पढ़ कर पहले तो संदेह होता है कि उस समय यह प्रथा प्रचलित थी । पाश्चात्य पण्डितों ने वैदिक साहित्य पर यथोचित आलोचना की है और वेदपंथी समाज की भूल को छिपाने की उन्हों ने कभी चेष्टा नहीं की है । उन सब का मत है कि उस समय नर-यज्ञ प्रचलित नहीं था । शुनःशेफ की कहानी निरी कहानी है । वह इतिहास नहीं है । पण्डितों का मत है कि यह काल्पनिक उपाख्यान बाद को मिलाया गया है । नर यज्ञ का उस समय चलन होता तो शुनःशेफ को मारने के लिए मारने वाले का अभाव न होता । विश्वामित्र जो इस यज्ञ के ऋत्विक् थे शुनःशेफ के बाप पर बड़े नाराज़ हुए थे और यज्ञ-भंग होने पर बहुत ख़ुश हुए थे । शुनःशेफ ने भी पिता से कहा था तुम मेरे बाप नहीं हो, तुम ने जो काम किया है, शूद्र भी वह नहीं करता । इस लिए इस उपाख्यान से यह प्रतिपन्न नहीं होता कि उस समय नरयज्ञ प्रचलित था । पश्चिम के पण्डित इसे Symbolical Sacrifice कहते हैं । प्राचीन वेदपन्थी समाज में नर-यज्ञ नहीं था यह बात एक तरह मतभेदरहित है ।

अच्छा इन बातों को इस समय रहने दीजिए । शुनःशेफ के उपाख्यान में आपने देखा कि राजपुत्र रोहित ने अपने बदले में शुनःशेफ को भेंट देकर देवता को प्रसन्न करना चाहा था । इस तरह एक के बदले में दूसरे को देना, प्रतिनिधि बना कर किसी का प्रदान करना निष्क्रय-(Vicarious offering) कहाता है । यज्ञानुष्ठान में इस तरह की निष्क्रय-प्रथा बहुत

देशों में प्रचलित थी। टायलर साहब ने अनेक देशों से इस तरह के दृष्टान्त इकट्ठे किये हैं। ईसाधर्म्म इस प्रथा पर ही प्रतिष्ठित है। समस्त मानवजाति बाबा आदम के पाप से पापी है। उस पाप के प्रायश्चित्त के लिए Sacrifice की ज़रूरत है। यहूदियों में पाप को धोने के लिए पशुबलि की प्रथा का प्रचार था। जहोवा के मंदिर में हज़ारों पशुओं की बलि होती थी। ईसा ने आकर कहा—अब पशुओं की बलि की ज़रूरत नहीं है। जब तक मनुष्य अपनी बलि न देगा तब तक ईश्वर का कोप शान्त न होगा। नर-बलि की ज़रूरत है। किन्तु विधाता करुणामय है। उस ने सोचा कि बिना मेरी दया के मनुष्य की रक्षा नहीं है। इस लिए उस ने अपने पुत्र को मर्त्यलोक में भेजा। यह पुत्र ही ईसा थे। पिता पुत्र में कुछ भेद नहीं है। पिता पुत्र दोनों एकात्मा है, ईश्वर भी एक ही है। किंतु पिता भी जैसा ईश्वर है, पुत्र भी ठीक वैसा ही ईश्वर है। यह अचिन्त्य भेदाभेद का विषय है। भेद होने पर भी भेद नहीं है, इस पहेली को मनुष्य नहीं बता सकता। जो हो, ईसा मनुष्यशरीर में पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। वह एक ओर तो सोलह आना ईश्वर थे और दूसरी ओर सोलह आना मनुष्य थे। पूरे ईश्वर और पूरे मनुष्य थे। पूरे मनुष्य थे इसी लिए वह मानव जाति के प्रतिनिधि हुए। उन्होंने अपनी इच्छा से अपने को यज्ञ के पशु के रूप में अर्पण किया उन के रक्त से मानव जाति का पाप एक साथ धुल गया। यह निष्क्रय हुआ। मनुष्य अपने को अर्पण न कर सका, ईश्वर स्वयं मनुष्य होकर निष्क्रय रूप में मानव जाति का प्रतिनिधि बना और अपना उत्सर्ग किया, क्रूस

पर चढ़ कर उस ने प्राण देदिये। यह Vicarious Sacrifice हुई। यह महायज्ञ है। इस अकेले यज्ञ से मनुष्यजाति के पाप नष्ट होगये। फिर किसी यज्ञ की ज़रूरत न रही, जहोवा के मन्दिर में पशु-बलि की भी ज़रूरत न रही।

वेदपन्थी समाज में नरयज्ञ प्रचलित न था पर इस की स्मृति मालूम होती है उस समय तक दूर न हुई थी। किसी के बदले में किसी को निष्क्रय रूप में भेंट किया जा सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण की आख्यायिका से यह पता चलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है, पहले समय में देवता मनुष्य को पशुरूप में आलम्भन अर्थात् यज्ञ के लिए वध करने को तय्यार हुए थे। मनुष्य में से यज्ञभाग निकल कर घोड़े में घुस गया, घोड़ा मेध्य होगया। मेध्य का अर्थ है यज्ञ योग्य, देवता को अर्पण किये जाने योग्य। यज्ञ भाग के निकल जाने पर देवताओं ने मनुष्य को छोड़ दिया। वह मनुष्य किंपुरुष हो गया। देवता घोड़े के आलम्भन पर तुले। घोड़े में से भी यज्ञभाग निकल भागा और गाय में घुस गया, तब गाय मेध्य हुई। देवताओं ने घोड़े को छोड़ दिया, घोड़ा मृग हो गया। देवता गाय पर टूटे। गाय में से यज्ञभाग निकल कर मेंढे में घुस गया, फिर मेंढा मेध्य हो गया, देवताओं ने गाय को छोड़ दिया वह गवय होगई। देवताओं ने मेंढे को ताका मेंढे में से यज्ञभाग निकल गया और बकरे में चला गया। फिर छाग मेध्य हुआ देवताओं ने मेंढे को छोड़ दिया। मेंढा ऊँट हो गया। बकरे में बहुत दिनों तक यज्ञ भाग रहा। इसीलिए पशुओं में छाग

यज्ञ के लिए सब से श्रेष्ठ है। देवता छाग का आक्रमण करने लगे। छाग में से यज्ञभाग निकल कर पृथ्वी में घुस गया। फिर पृथ्वी मेध्य हुई। देवताओंने छाग को छोड़ दिया, वह छोटा हाथी होगया। यज्ञ भाग के निकल जाने से ये सब पशु अमेध्य होगये। इनका मांस न खाना चाहिए। देवता पृथ्वी में घुसे यज्ञभाग की तलाश करने लगे। वह यज्ञभाग चावल होगया, इसी लिए यज्ञ में चावल से बना पुरोडाश दिया जाता है। इस से पशुदान का ही फल मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में भी यह आख्यायिका क़रीब क़रीब इसी रूप में आई है।

आओ, अब इस आख्यायिका को समझने की चेष्टा करें। इष्टियाग में,पशुयाग में और सोमयाग में भी पुरोडाश की आहुति दी जाती है। अधिकांश वैदिकयज्ञों में पुरोडाश आहुति की प्रथा प्रचलित है। पशुमांस की आहुति क्रमशः अप्रचलित हो रही है। पूर्णमास आदि इष्टियाग में पशुमांस की बिलकुल ज़रूरत नहीं होती। पशुयाग और सोमयाग में पुरोडाश भी होता था और पशुमांस का भी निषेध न था। हां, पशुओं की संख्या निर्दिष्ट कर दी गई थी। कितने पशु देने होंगे यह बात तय कर दी थी। उस से अधिक कोई नहीं दे सकता था। निरूढ पशुबन्धयाग अवश्य कर्त्तव्य होने पर भी साल में एक बार-या-दो बार किया जासकता था और उस में एक ही पशु की ज़रूरत पड़ती थी, काम्यकर्म्मों में देवताओं की प्रसन्नता के लिए जो पशुबलि देते थे वे इच्छानुसार संख्या बढ़ा सकते थे। अब भी देवी की पूजा में ग़रीब एक बलि देता है और सम्पन्न अनेक, किन्तु वैदिक यज्ञों में अपनी इच्छा से

कोई संख्या बढ़ा नहीं सकता था, बड़े बड़े धनवालों के काम्य यज्ञों में-अश्वमेध आदि बड़े आडंबर के यज्ञों-में बहुत से पशुओं की ज़रूरत होसकती थी किन्तु साधारण गृहस्थ के नित्ययज्ञों में बहुत से पशुओं की ज़रूरत न होती थी। वैदिक यज्ञ की पशुहत्या से एक प्रकार की महामारी होती थी यह मानने के लिए कोई कारण दिखाई नहीं देता। उस समय पशुओं की हत्या करने में लोगों की अरुचि होगई थी, यह ठीक है। किन्तु पुरानी प्रथा एक साथ नहीं छोड़ी जाती और ख़ास कर धर्म्मसम्बन्धी अनुष्ठान की। उस समय जो कुछ पशुवध होता था वह उस से भी पहले समय का Survival मालूम होता है। पशु के बदले रोटी देने का तात्पर्य्य भी यही है। ब्रह्मवादी कहते हैं पशुमांस के बदले खेत में पैदा हुए जौ चावल देने से भी पशु देने का फल मिल जाता है। इसे ही निष्क्रय कहते हैं। पशु के बदले में पुरोडाश निष्क्रय है। ऊपर जो उपाख्यान लिखा गया है उस में ब्रह्मवादियों ने साफ़ साफ़ कहा है कि सम्भव है किसी समय यज्ञ में नर मांस भी दिया जाता हो, किन्तु वह क्रमशः अप्रचलित होगया, नरपशु के बदले क्रमशः घोड़ा, गाय, भेड़, बकरा, बाद को जौ और चावल दिये जाने लगे। इसी का नाम निष्क्रय है।

यज्ञ के सम्बन्ध में तीन तरह के पण्डितों के मतों का उल्लेख हुआ, समाज के विकास की तीन तहों के ये मत हैं। पहले स्तर में देवता का स्वार्थ पूरा कर के उस की ख़ुराक दे कर, उसे ख़ुश करना और इस तरह अपना मतलब सीधा करना। दूसरे स्तर का उद्देश है-कोई चीज़ भेट देकर देवता

की वश्यता का स्वीकार। इस में देवता के लाभालाभ का विचार नहीं होता। काम की चीज़ के बदले बेकार चीज़ दे कर सब काम चलाया जा सकता है, बतौर निष्क्रय के कम दाम की चीज़ भी दी जा सकती है। मांस के बदले रोटी से भी काम चल जाता है। तीसरे स्तर में स्वार्थ के बदले स्वार्थ-त्याग की बात है। वहां मुख्य उद्देश त्याग ही होता है। वैदिक यज्ञानुष्ठानों में यह अभिप्राय खूब स्पष्ट हुआ था उन में त्याग की ही प्रधानता थी। याज्ञिकों की परिभाषा में किसी प्रकार के त्याग का नाम ही यज्ञ है। अग्नि, सोम, इन्द्र आदि के लिए किसी याग में यजमान की ओर से अध्वर्य्यु जो आहुति देता है, यजमान उसे छूकर त्याग मन्त्र पढ़ता है। त्यागमन्त्र—इदमग्नये-न मम। तात्पर्य्य यह है कि देवता को सर्वस्व देना होगा, जो सब से प्रिय है, वही देना होगा। पूरे तौर पर आत्म-समर्पण करना होगा। स्वार्थ की ओर दृष्टि रख कर ही काम न चलेगा। फिर भी मनुष्य सर्वस्वत्याग नहीं कर सकता, आत्मसमर्पण नहीं कर सकता अपने को नहीं दे सकता, इसी लिए निष्क्रय रूप में वह और कुछ दे देता है। इस निष्क्रय का ज़िक्र वेदों में कई जगह बहुत खुले शब्दों में आया है। ऐतरेय ब्राह्मण के एक स्थल पर लिखा है जो यजमान सोम-याग में दीक्षित होता है वह सब देवताओं के निकट अपना आलम्भन (आत्मसमर्पण) करता है वह अपने बदले में देव-ताओं को पशु देता है। ऐतरेय ब्राह्मण ने निष्क्रय शब्द का साफ़ तौर से व्यवहार किया है। मतलब यह कि यज्ञ में जो पशु दिया जाता है वह यजमान का ही प्रतिनिधि होता है।

पहले कहा जाचुका है कि हविःशेष भक्षण किये बिना कोई यज्ञ भी संपूर्ण नहीं होता। अग्निहोत्र याग के बाद जिस दूध की आहुति दीजाती है, उस का शेष खाया जाता है। पूर्णमास याग में पुरोडाश का कुछ अंश यागके बाद खाया जाता है। पशुयाग में पशु का थोड़ा सा मांस भी खाया जाता है। सोमयाग के पहले अग्नि और सोम को जो पशु दिया जाता है उसका मांस खाना चाहिए या नहीं इस पर बहस है। संशय का कारण भी हैं। यह पशु तो यजमान का ही प्रतिनिधि है, यजमान ने अपने बदले में ही यह पशु दिया है। फिर पशुमांस तो नरमांस हुआ, इस लिए नरमांस खाना ठीक है या नहीं? एक ब्रह्मवादी ने यह आपत्ति की है। ऐतरेय ब्राह्मण ने इसका खण्डन किया है। ऐतरेय ब्राह्मण निष्क्रय सिद्धान्त का समर्थक है पर उसे यहाँ दूसरे सिद्धान्त का आश्रय लेना पड़ा है। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है कि अग्नि और सोम की सहायता से इन्द्र ने वृत्र का वध किया था, वृत्र को मार कर खुशी खुशी उसने अग्नि और सोम को वर दिया कि सोम याग के पहले दिन जो पशु दिया जायगा वह तुम्हें मिलेगा इसे तुम अपना पुरस्कार समझो। एक साँस में निष्क्रय सिद्धान्त उलट गया। यह पशु देवताओं का भक्ष्य द्रव्य रह गया नर का प्रतिनिधि न रहा, इस लिए उस के मांस खाने में कुछ दोष नहीं है। बात यह है, हविःशेष भक्षण ज़रूरी है। क्यों ज़रूरी है, यह बड़ा क़िस्सा है, फिर सुनायेंगे-हाँ इतना कहे देते हैं कि ब्रह्मवादियों की तर्क सुन कर आप हँसेंगे नहीं। समस्त ईसाई धर्म ठीक इसी तरह के मत पर

प्रतिष्ठित है और इसी तरह के तर्क उठने के कारण ईसाई धर्म सैकड़ों शाखाओं में बँट गया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है ईसामसीह एक ओर तो सोलह आना ईश्वर थे दूसरी ओर पूरे मनुष्य थे। उन में देवत्व और मानवत्व मिला हुआ था। उन जैसा मुकम्मिल मनुष्य ही सब मनुष्यों का निष्क्रय या प्रतिनिधि हो सकता था। यज्ञ में बिना आत्मसमर्पण के ईश्वर की प्रसन्नता नहीं होती। यज्ञ में मनुष्य का आत्मसमर्पण आवश्यक है। इसी लिए उसने समस्त मानव जाति की ओर से अपने को भेंट दिया। सूली पर चढ़ कर मृत्यु का आलिङ्गन ही उन का आत्मसमर्पण था। सूलीपर चढ़ने से एक दिन पहले रात को वह अपने शिष्यों के साथ भोजन करने बैठे। भोजन में रोटी और शराब थी, उन्हों ने रोटी के टुकड़े सबको देकर कहा-यह रोटी मेरा मांस है और शराब मेरा .ख़ून है। इसे खाना मानो हमारा मांस और .ख़ून खाना है। इस का मतलब यह है कि मैंने यज्ञ के पशुरूप में अपनी बलि दी है, यजमान को हविःशेष खाना लाज़िमी है। मेरा मांस और .ख़ून खाना भी ज़रूरी है, हमारे चले जाने के बाद तुम लोग इसी तरह रोटी और शराब बाँट कर खाना। इस से तुम्हारा दैनिक यज्ञ हुआ करेगा। जहोवा के मन्दिर में अब पशुबलि की ज़रूरत नहीं रहेगी। तब से पृथ्वी के समस्त ईसाई इस अनुष्ठान का पालन करते हैं। रोटी और शराब को भेंट में देकर वे खाते हैं। यथाविधि मन्त्र पाठ करके भेंट दी जाती है और रोटी ईसा का मांस और शराब ईसाका .ख़ून बन जाती है।

इसे खाने से मानो ईसा का मांस और .खून खाया जाता है। ईसा के बड़े यज्ञ का अनुकरण कर के उन के आश्रित यह छोटा यज्ञ किया करते हैं । इस का नाम है Eucharestic Sacrifice यह वास्तव में हविःशेष भक्षण ही है इस से ईसा के साथ ईसाइयों की एकात्मता हो जाती है। इसी लिए इस अनुष्ठान का नाम Holy Communion है । इस देश के ब्रह्मवादियों में जिस तरह तर्क उठी थी अग्नि और सोम के लिए दिया पशुमांस नरमांस है या नहीं उसी तरह ईसाइयोंमें भी बात चली थी कि रोटी और शराब ईसा का मांस और रक्त बनता है या नहीं? रोटी और शराब मांस और .खून हो जाता है यह बात कोई रसायनशास्त्री नहीं कह सकता पर समस्त ईसाई एक समय एक स्वर से कहते थे कि उत्सर्ग के बाद रोटी रोटी नहीं रहती और शराब शराब। सचमुच वे मांस और रक्त में बदल जाती है जो भक्त हैं उन्हें रोटी में .खून की बूँद तक दीख जाती है रोटी और शराब की इस तरह की परिणतिका नाम transubstantiation है।रोमन और ग्रीक चर्च के सब लोग अर्थात् बारह आना ईसाई इस बीसवीं शताब्दी में भी इस अलौकिक परिणति का विश्वास करते हैं। गुरुस्थानीय डाक्टर प्रफुल्लचन्द्रराय महाशय इसी समय विश्लेषण करके दिखा देंगे कि रोटी में सिर्फ Starch ही है उत्सर्ग करने पर वह blood में परिणत नहीं हुई है हम तो उन के शिष्यस्थानीय हैं, हमें भी वही बात कहनी होगी। पर योरप के अधिकांश मनुष्य आज भी इस पर विश्वास करते हैं कि रोटी रोटी नहीं रहती और शराब

शराब। इस विश्वास पर आघात करने से उन के जीवन की गांठ खुल जायगी।

अब बहुत बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है। हमें इस विषय पर फिर आना है। ईसाई समाज और वेदपंथी समाज में यज्ञानुष्ठान का तात्पर्य एकसा है, यह दिखाने के लिए ही हम ने यह प्रसङ्ग उठाया है। ईसाइयों के देवता यहूदियों के देवताओं का ही रूपान्तर हैं। यहूदियों के देवता मांस और ख़ून दोनों चाहते हैं, इसीलिए ईसा ने दोनों चीज़ें उन्हें दीं। शराब रक्त हुई और रोटी मांस हुई। हमारे देश में आज कल महादेवी रक्तमांस बलि-प्रिया हैं। किन्तु वैदिक देवता रक्तप्रिय न थे। पशु का रक्त राक्षसों को पिलाया जाता था देवता मांस पाकर ही ख़ुश होजाते थे। पुरोडाश या रोटी मांस स्थानीय है ईसाइयों की रोटी जिस तरह मांसस्थानीय है हमारी रोटी भी उसी तरह मांसस्थानीय हो रही। ख़ून सो पंत्रोद्य [illegible] उत्तर देता है और बहुत साफ़ उत्तर देता है-वह जो [illegible] का दान है, उस से पशु का ही आलम्भन होता है। जिन जौ या चावलों से पुरोडाश बनाया जाता है, उन में जो छिलके लगे रहते हैं, वही पशु के लोम हैं, जो भूसी होती है, वही पशु की चर्म है जो रोटी बनती है वही पशु का मांस है जो अंश फेंक दिया जाता है वही रक्त है। भूसी और चावलों का कुछ अंश रख दिया जाता है और याग समाप्त होने पर वह राक्षसों के लिए दियाजाता है-यह बात पूर्णमास-याग के प्रसङ्ग में कही जा चुकी है। इस तरह राक्षस भी अपना प्राप्य रक्त का अंश पा लेते हैं।

हमारे देवता .खून नहीं चाहते । ईसाइयों के यज्ञ में .खून की जगह शराब दी जाती है। वैदिक यज्ञों में भी दो एक जगह शराब की ज़रूरत होती है । सौत्रामणि यज्ञ में शराब का रिवाज था । क्षत्रिय राजाओं के राजसूय यज्ञों में भी शराब चलती थी । साधारणतः यज्ञ में शराब की ज़रूरत न होती थी । हां, और एक मादक द्रव्य की ज़रूरत होती थी । वह सोमलता का रस था अगली बार सोमयाग की कथा सुनाने की इच्छा है, आप लोग धैर्य का प्रबन्ध कर रखिए ।

सोम याग।

सोम यज्ञ एक बड़ी चीज़ है। इस के अनुष्ठान बहुत जटिल हैं। बहुत सामान और अनेक ऋत्विकों की ज़रूरत होती है। इस यज्ञ में ख़र्च भी बहुत पड़ता है। हर एक इसे नहीं कर सकता, इसी लिए इसकी नित्य कर्मों में गणना नहीं है। फिर भी, ब्राह्मणों के घर में तीन पीढ़ियों तक यदि इसे कोई न करता था तो उस कुल को निन्दा होती थी। उस ब्राह्मण को कुब्राह्मण कहते थे। सोमयज्ञ आर्य्य जाति का बहुत पुराना अनुष्ठान है। आर्य्य जाति के भारतवर्ष में आने से पहले ही उस में इस का प्रचार था। प्राचीन ईरानियों में भी यह प्रचलित था। सोम स्वयं एक देवता हैं। देवताओं में भी वह राजा हैं। बाद को देवताओं में चार राजाओं की कथा मिलती है। एक एक राजा एक एक दिशा का स्वामी है। इन्द्र राजा पूर्व के, यम दक्षिण के, वरुण पश्चिम के और सोम उत्तर के स्वामी हैं। सोम द्युलोक में रहते हैं। मर्त्यलोक के पार्थिव सोम उन

के प्रतिनिधि हैं। यह पार्थिव सोम एक तरह का पहाड़ी पौधा है। हिमालय के उत्तर में मूजवान् पर्वत पर यह मिलता है। मूजवान् पर्वत कहां है—ठीक नहीं। सम्भव है बाद को इसी का नाम कैलास पड़ गया हो। क्योंकि मूजवान् पर्वत पर रुद्र का निवास था। वेद में इस का उल्लेख है। यही रुद्र देव बाद को हमारे महादेव बन गये हैं। सोम उन्हीं महादेव का चिह्न है। महादेव ललाट या मस्तक में सोमकला धारण करते हैं। आज कल हम सोम का अर्थ चन्द्र करते हैं ब्राह्मण ग्रन्थों में भी सोम और चन्द्र को एक ही समझा गया है। पर पश्चिम के सब पण्डितों का यह मत नहीं है। वे कहते हैं वैदिक साहित्य की बहुत पुरानी तह में सोम के साथ चन्द्र का कोई सम्पर्क नहीं था। वेद का सोम असल में सोमलता थी। सोम पान करने से कुछ नशा होता था, जिस से कुछ बल और स्फूर्त्ति मालूम होती थी। इसी से उसे देवता मान लिया था। ईरानियों में सोम को होमा कहते थे। हमारे देश से सोमयाग बिलकुल उठ गया, किन्तु बम्बई के पारसी अब भी सोमयाग करते हैं आज कल वे जिस पौधे का रस पीते हैं उसे हुम कहते हैं। मार्टिन हाग नामक पण्डित ने मूल ऐतरेय ब्राह्मण और उस का अनुवाद निकाला है। उन्हों ने बम्बई में रह कर पारसियों के सोम सम्बन्धी अनुष्ठानों की बहुत कुछ खोज की है। उन्हों ने हुम रस का पान भी किया है, उसका ज़ायका ख़राब है। उस से किसी मनुष्य या देवता की तृप्ति की सम्भावना नहीं है। मालूम यह होता है कि पुराने ज़माने में यज्ञ के लिए जिस पौधे का रस काम में लाया जाता था उस का

अब पता नहीं लगता। वेदपन्थी समाज में जब सोम यज्ञ का बहुत प्रचार था तब भी सोमलता दुष्प्राप्य हो चली थी। बहुत से मनुष्यों का यही व्यवसाय था कि वे उसे पहाड़ से लाकर यज्ञ के लिए संग्रह करते थे। यज्ञ के समय सोम बेचने वाले यज्ञ-शाला के बाहर आ बैठते थे। यजमान क़ीमत देकर उसे खरीद लेते थे पर सोम क्रमशः दुष्प्राप्य होने लगी—उस का एक मुख्य कारण है। यह उस समय की बात है जब कि द्विजातियों में सोमयज्ञ बहुत प्रचलित था। उस समय अनेक तरह के सोमयाग प्रचलित थे। क्षत्रिय राजा अश्वमेध, राजसूय आदि जो बड़े बड़े यज्ञ करते थे वे भी सोमयाग ही थे। कुछ समय बाद क्षत्रिय और वैश्य सोमपान के अधिकार से वंचित होगये। ब्राह्मणों ने सोमपान में अपना ही अधिकार रक्खा। क्षत्रिय और वैश्य यजमान सोमयज्ञ कर सकते थे पर सोम रस के बदले उन्हें और किसी चीज़ का रस दिया जाता था। क्षत्रिय लोग बड़, पीपल, पिलखन का रस पीते थे, वैश्यों के लिए दही की व्यवस्था थी, इसी से उन्हें सोमपान का फल मिल जाता था। क्षत्रिय लोग सोमपान कर सकते हैं या नहीं, कुछ दिनों इस विषय पर खूब आन्दोलन हुआ था। क्षत्रिय लोग योंही अपना अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे यज्ञ के समय इस पर हाथापाई की नौबत आजाती थी। जो क्षत्रियों के सोमपान करने के विरोधी थे, वे एक बड़ी नज़ीर पेश करते थे देवताओं के राजा इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का वध किया था वृत्र का वध किया था और भी उसने अनेक अनुचित काम किये

थे.। विश्वरूप और वृत्र देवताओं मे दोनों ब्राह्मण थे, इन्द्र क्षत्रिय था। इन्द्र को ब्रह्महत्या करते देख देवताओं ने विद्रोही बन कर उन का सोम पान बन्द कर दिया था। बाद को देखादेखी क्षत्रियों का सोमपान भी निषिद्ध कर दिया गया।

वेदपन्थी समाज में अनेक तरह के सोमयागों का अनुष्ठान क्रमशः बढ़ने लगा। किसी यज्ञ में एक दिन और किसी में कई दिन लगते थे। एक दिन के यज्ञ को ऐकाहिक यज्ञ कहते थे। दो से लेकर बारह दिन तक समाप्त होने वाले यज्ञ को अहीन कहते थे। बारह दिन या उस से अधिक दिन जिस यज्ञ में लगते थे उसे 'सत्र' कहते थे। कोई कोई सत्र तो साल भर तक चलता था। हम आप को एक दिन में समाप्त होने वाले यज्ञ का विवरण सुनाना चाहते हैं। इस श्रेणी के सोमयाग का साधारण नाम ज्योतिष्टोम है। ज्योतिष्टोम के सात भेद थे। अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, अत्यग्निष्टोम, अप्तोर्याम और वाजपेय। इन में अग्निष्टोम असली है, बाकी उस के ही प्रकारान्तर हैं। अग्निष्टोम की पद्धति जान लेने से और बाकी यागोंकी पद्धति भी जान ली गई समझिए।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की पद्धति ठीक ठीक नहीं मिलती। पद्धति के साथ साथ अनुष्ठानों का तात्पर्य, मन्त्रों की व्याख्या और उसी से सम्बन्ध रखने वाले अनेक उपाख्यान भी ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलते हैं। सिर्फ पद्धति को समझने के लिए श्रौतसूत्र नामक स्मृति शास्त्र की सहायता लेनी पड़ती है। ऐतरेय ब्राह्मण का अवलम्बन कर के आश्वलायन श्रौत सूत्र

और शतपथ ब्राह्मण का सहारा लेकर कात्यायन श्रौतसूत्र बने हैं। हम ने ऐतरेय और शतपथ इन दो ब्राह्मणों और आश्वलायन और कात्यायन-इन दो श्रौत सूत्रों की सहायता लेकर अग्निष्टोम के विवरण का संकलन किया है। अग्निष्टोम यज्ञ अत्यन्त जटिल है। उसका ठीक ठीक विवरण दिया जाय तो बड़े से बड़े सहिष्णु पाठक का भी धैर्य्य टूट जाय। इस लिए बहुत कुछ काट छाँट करके जिस से उसका मोटा ज्ञान होजाय ऐसा विवरण दिया जाता है।

गृहस्थ की अग्निशाला में सोमयाग के लिए काफी स्थान नहीं होता था। ग्राम से बाहर कोई जगह पसन्द की जाती थी, उसे देवयजन भूमि कहते थे। वहां दो वेदियां बनाई जाती थीं, एक ऐष्टिक वेदि सोमयाग के साथ होने वाले अन्य इष्टियागों के लिए। उस के पूर्व में और एक बड़ी वेदि बनाई जाती है, उसे सौमिक वेदि या महावेदि कहते हैं-यह बहुत कुछ पाशुक वेदि की तरह होती है। ऐष्टिक वेदि के पहलू में यथास्थान आहवनीय आदि तीनों अग्नियों और ब्रह्मा आदि ऋत्विकों का स्थान होता था, यह सब इष्टियाग की तरह। इस वेदिको घेरकर जो यज्ञशाला बनाई जाती थी, उसे प्रागवंश-शाला कहते थे, इस शाला में पूर्व पश्चिम बांस पड़ते थे, इसी लिए इसे प्रागवंशशाला कहते थे। महावेदि के ऊपर भी इसी तरह की कई शालायें और मण्डप बनाये जाते थे। पश्चिम के मण्डप का नाम सदःशाला, बीच के मण्डप का हविर्धान होता था। वेदि के दोनों ओर दो छोटे मण्डप होते थे जिन्हें आग्नीध्रीय और मार्जालीय कहते थे। सदःशाला के भीतर

एक क़तार में अग्नि रहती थी, उस क़तार को धिष्ण्य कहते थे। धिष्ण्य के पास बैठ कर ऋत्विग् सोमयाग के मंत्र पढ़ते थे। बीच में गूलड़ का एक खूँटा गाड़ा जाता था, उद्गाता और उसके सहकारी उसे छूकर सामगान करते थे। पास के दोनों मण्डपों में भी दो धिष्ण्य होते थे। महावेदि के पूर्व में उत्तर वेदि और उस की नाभि पाशुक वेदिके समान होती थी। इसके पूर्व में पशु के बाँधने के लिए यूपका स्थान होता था, भीतर चात्वाल, उत्कर और शामित्रभूमि पशुयाग की तरह ही होती थी।

इष्टि याग में चार पशुयाग में छः किन्तु सोमयाग में सोलह ऋत्विगों की आवश्यकता होती है। सब के नाम जानने की ज़रूरत नहीं है। कुछके नाम जान लेने चाहिएं। अध्वर्यु, होता, ब्रह्मा और अग्नीत् तो होते ही हैं, इनके सिवा अध्वर्य्यु का सहकारी प्रतिप्रस्थाता और होताका सहकारी मैत्रावरुण भी होते थे। होता के और दो सहकारियों के नाम ब्राह्मणाच्छं-सी और अच्छावाक हैं। तकलीफ़ तो होगी पर इन दोनों नामोंको याद रखिए। इष्टियाग और पशुयाग में सामगान नहीं होता, पर सोमयाग में विना उसके काम नहीं चलता। इसी लिए उद्गाता और उसके सहकारी प्रस्तोता और प्रति-हर्त्ता इन तीन सामगायी ऋत्विगों की ज़रूरत होती है। इन ग्यारह के सिवा और पांच आदमियों की ज़रूरत होती थी, इस तरह सब सत्रह ऋत्विग् होते थे। सोलह ऋत्विगों के सिवा चन्द्राहुति के लिए दस चमसाध्वर्य्युओं की ज़रूरत होती थी। ये ऋत्विक् नहीं हैं, पर सोमयाग में सहायता करते

है। याग से पहले सोम प्रवाक नामक व्यक्ति सोलह ऋत्विकों को निमन्त्रण करता था। यजमान उन का वरण करता था। देवताओं के यज्ञ में अग्नि होता, आदित्य अध्वर्य्यु, चन्द्रमा ब्रह्मा, पर्जन्य उद्गाता और अप आदि अन्यान्य ऋत्विग होते हैं। यजमान पहले देव ऋत्विकों का वरण करता था। फिर उनके प्रतिनिधि के तौर पर मनुष्य ऋत्विकों का वरण करता था। यह पहले ही बताया जाचुका है कि अग्निष्टोम एक दिन का यज्ञ है। किन्तु उस से पहले कुछ इष्टियाग और अन्य कुछ कर्म बिना किये सोमयज्ञ करने का अधिकार नहीं होता था। इस लिए अग्निष्टोम यद्यपि एक दिन का यज्ञ था फिर भी उसे यथाविधि सम्पादन करने में पांच दिन लग जाते थे। अच्छा अब उसका सिलसिलेवार विवरण सुनिए।

पहला दिन-पहले दिन यजमान दीक्षित होता है। इष्टियाग और पशु याग में दीक्षा की ज़रूरत नहीं होती। यह दीक्षा और उस के साथ का इष्टियाग पहले दिन के प्रधान अनुष्ठान हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि इष्टियाग के लिए ऐष्टिक वेदि और सोमयाग के लिए महावेदि की ज़रूरत होती है। यजमान के घर पूर्णमास आदि यागों के लिए अग्निशाला होती है। किन्तु यहां ग्राम के बाहर नई यज्ञशाला में नई ऐष्टिक वेदि बनाली जाती है। यजमान के घर जो गार्हपत्य दिन भर जलती रहती है, उस अग्नि में से दो अरणियां तपाकर मँगाई जाती हैं। इसका नाम है—अग्नि समारोपण। इन अरणियों को घिस कर नई यज्ञ-शाला में नई गार्हपत्य जलाई जाती है। यजमान के घरकी गार्हपत्य और यह नई गार्हपत्य-एक ही

अग्नि है—इससे यह सिद्ध हुआ। इस गई , गार्हपत्य से नई आहवनीय और नई दक्षिणाग्नि यथाविधि जलाई जाती है। सोमयाग के आनुषङ्गिक जितने याग हैं वे सब इसी अग्नि में संपादित होते हैं। अग्निस्थापन के बाद यजमान दीक्षा-ग्रहण करता है। यज्ञ-शाला के बाहर यजमान सपत्नीक स्नान करता है। स्नान के बाद कपड़े छोड़ कर कुशों के ऊपर खड़ा होता है, और शरीर से मक्खन मलता है। आँख में काजल डालता है, कुश से देहकी शुद्धि करता है अँगूठे अंदर को कर के मुट्ठी बांधे हुए वह यज्ञ-शाला में जाता है, यज्ञ की समाप्ति तक वह बाहर नहीं आता। वहां एक इष्टियाग करना होता है। इस इष्टियाग का नाम दीक्षणीय इष्टि है। दीक्षा के अनुकूल है, इस लिए उसे दीक्षणीय कहते हैं। याग के बाद यजमान काले हरिन की चर्म पर बैठता है। मेखला पहनता है, पगड़ी बांधता है, कपड़े के खूंट में हिरन का सींग बांधता है और हाथ में गूलड़ का डंडा लेता है। यह यजमान की पोशाक हुई। यजमानपत्नी का वेष भी प्रायः वैसा ही होता है, बजाय पगड़ी के वह जाली पहनती है। इस वेष का भी कुछ तात्पर्य्य है। दीक्षा से यजमान का नया जन्म होता है, यज्ञ-शाला ही मानो माता का गर्भ है। वहां उसे बालक बनकर जब तक यज्ञ होता है बैठा रहना पड़ता है। यज्ञके बाद जन्म पाकर वह बाहर आता है। इस वेष का क्या तात्पर्य्य है वह ऐतरेय ब्राह्मण ने बताया है। गर्भ में बालक मुट्ठी बांधे रहता है। दीक्षा के उपलक्ष्य में जो इष्टियाग होता है,उसका देवता अग्नि और विष्णु है। अग्नि सब देवताओं से नीचे हैं और विष्णु

सब के ऊपर हैं। इस लिए इन दो देवताओं का याग करने से सब देवताओं का याग हो जाता है। इन दो देवताओं के लिए पुरोडाश दिया जाता है। अनुष्ठान पूर्णमास याग के समान ही होता है। दीक्षित यजमान को कुछ नियम पालने पड़ते हैं। वह सच बोलेगा, क्रोध न करेगा, नर्म बात कहेगा, सूर्य्य का उदय अस्त न देखेगा, जल में न घुसेगा, वर्षा में न भीजेगा। भोजन के सम्बन्ध में भी कुछ नियम हैं। दीक्षा से पहले पेट भर भोजन कर सकता है। उसके बाद नियमों का बंधन शुरू हो जाता है। फिर उसे दो बार सिर्फ़ दूध मिलता है। दुग्ध का नाम व्रत है, दुग्धपान को व्रतपान कहते हैं। एक बार सूर्य्योदय से पहले, एक बार दोपहर को दूध मिलता है। दूध की मात्रा क्रम से कम होती जाती है। पांचवें दिन अर्थात् सोमयाग के खास दिन दुग्धपान भी निषिद्ध है। उस दिन यज्ञ का हविःशेष ही उसे मिलता है।

दूसरा दिन-इस दिन सवेरे ही, यज्ञ का आरम्भ सूचक एक इष्टियाग होता है, जिसे प्रायणीय इष्टि कहते हैं। प्रायण शब्द का अर्थ आरम्भ है। इस इष्टि के देवता पथ्या, अग्नि, सोम, सविता और सब के पीछे अदिति हैं। देवताओं ने अदिति को एकबार वर दिया था, तुम से ही यज्ञ आरम्भ होगा, तभी से सोमयाग से पहले अदिति के लिये यज्ञ किया जाता है। अदिति को चरु दिया जाता है, बाक़ी चारों को आज्य।

इस याग के बाद सोम की खरीदारी शुरू होती है। यज्ञशाला के बाहर सोम बेचनेवाला सोम लिये बैठा रहता है। ऊपर ज़िक्र आचुका है, सोमलता दुष्प्राप्य थी, पहाड़ से लाकर

यज्ञ के लिए बेचने वालों का एक दल होगया था। सोमविक्रेता यज्ञशाला के बाहर बैठकर उसे बेचता था, इसमें बड़ी दिल्लगी होती थी। सोम पहले गन्धर्वों के पास थी, देवता चालाकी से उसे उड़ा लाये। गन्धर्व स्त्री-प्रिय होते हैं। देवता ने कुमारी वाग्देवी को उनके पास भेजा। वह गन्धर्वों को धोखा देकर सोम ले आई और खुद भी साफ़ निकल आई। सोम की बिक्री में इस घटना का भी अभिनय होता है। ऋत्विगों के साथ यजमान एक छोटीसी बछिया लेकर सोम विक्रेता के पास जाता है। सोम विक्रेता मानो गन्धर्व है और बछिया वाग्देवी है। भाव ताव के बाद बछिया देकर सोम खरीद ली जाती है। सोम हाथ में आते ही डंडा मारकर सोमविक्रेता को भगा दिया जाता है और बछिया भी लौटाली जाती है। गन्धर्व बेचारे कोरे रहगये, सोम भी गई, वाग्देवी भी हाथ न लगी। यजमान सोमलता को कपड़े में लपेटता है और सिर पर रखकर गाड़ी में रख देता है। यजमान और अध्वर्यु गाड़ी के ऊपर बैठ जाते हैं, होता ऋग्मंत्र पढ़ते हैं और सुब्रह्मण्या नामक ऋत्विक गाड़ी हांकता है। गाड़ी प्राग्वंश शाला के चारों ओर घुमाकर भीतर लाई जाती है। वहाँ गाड़ी से सोम को उतार कर वेदिकवेदि के पूर्व में, आहवनीय के पास लकड़ी पर रख दिया जाता है।

सोम देवताओं के राजा हैं। राजा अतिथि हो कर किसी के घर आयें तो बड़ा समादर होता है। राजा सोम अतिथि-रूप में यजमान की यज्ञशाला में आये हैं, इस समय उन की अभ्यर्थना के लिए एक इष्टियाग करना होगा।

इसे आतिथ्य इष्टि कहते हैं। इस का देवता विष्णु है, हव्य द्रव्य पुरोडाश है। इस में खास बात यह होती है कि याग से पहले मन्थन द्वारा अग्नि उत्पन्न करके उसे आहवनीय में मिला लिया जाता है। आतिथ्य इष्टि के बाद प्रवर्ग्य यज्ञ और उपसत् इष्टि होती है। इस समय यजमान और सब ऋत्विक् एक साथ घी छूकर क़सम खाते हैं कि इस यज्ञ में हम सब एक मत होकर कर्म करेंगे, आपस में विरोध नहीं करेंगे। इस अनुष्ठान का नाम है तानूनपत्र। असुरों के साथ जब युद्ध हुआ था तब देवताओं ने इसी तरह घी छूकर परस्पर सन्धिबन्धन किया था। इस समय योरप के मित्र राष्ट्र जिस तरह जर्मनी के विरुद्ध सन्धिबन्धन किये हुए हैं। उपसत् इष्टि के समय सोमलता को ताज़ा रखने के लिए उस पर जल का छींटा दिया जाता है। इसे आप्यायन कर्म कहते हैं। आप्यायन के बाद सोम की निह्नव या पूजा होती है। प्रस्तर को तो आप भूले न होंगे। दर्शयाग में वेदि के ऊपर मुट्ठी भर जो कुश रहते हैं उन्हें प्रस्तर कहते हैं। यजमान कुछ ऋत्विकों के साथ प्रस्तर के ऊपर हाथ रखकर निह्नव मन्त्र पढ़ता है। इस मन्त्र से द्यावापृथ्वी को प्रणाम किया जाता है। राजा सोम द्यावापृथ्वी के अपत्य स्वरूप हैं। उन्हें प्रणाम करके मानो सोम ही की पूजा हुई।

आतिथ्य इष्टि के बाद प्रवर्ग्य और उपसत् इष्टि होती हैं। इनमें प्रवर्ग्य की बात ज़रा खोल कर सुनाते हैं। इस में आहुति के द्रव्य का नाम घर्म है। गर्म घी में बकरी और गाय का दूध मिलाकर गर्म किया जाता है, इसे ही घर्म कहते हैं। देवता

का नाम भी घर्म देवता है। संस्कृत घर्म से आज कल का 'गर्म' शब्द बना है, गर्म दूध दिया जाता है, इसी लिए उस का नाम घर्म है। मट्टी के बरतन में घर्म पकाया जाता है।उस पात्र को महावीर कहते हैं। इस में जो पुरोडाश दिया जाता है उसे रौहिण पुरोडाश कहते हैं। घर्मपाक के लिए अलग अग्नि रहती है। गार्हपत्य की अग्नि से इस अग्निको जलाया जाता है। अध्वर्यु दो ऋत्विगों के साथ आग को झपकता है। प्रस्तोता ऋत्विग् सामगान करता रहता है। होता ऋग्मन्त्र पढ़ता है अध्वर्य्यु अग्नि पर रखे तप्त महावीर में घी छोड़ता है। इस के बाद अध्वर्य्यु रौहिण पुरोडाश की आहुति देकर गाय को दुहता है, प्रतिपस्थाता बकरी को दुहता है, प्रस्तोता सामगान करता है और होता ऋक् पढ़ता है। लकड़ी का एक बड़ा हत्था होता है, उसे उपयमनी कहते हैं। इस हत्थे पर तप्त महावीर रक्खा जाता है, और उस में गाय का और बकरी का दूध डाल दिया जाता है बस घर्म्म बन गया। अध्वर्य्यु इस घर्म से आश्विद्वय के लिए आहुति देता है, फिर अग्नि के लिए एक आहुति देता है। होता यथाविधि याज्या-मंत्र पढ़ता है। बादको घर्म का कुछ अंश हविःशेष के तौरपर खाया जाता है। हविःशेष भक्षण से पहले रौहिण पुरोडाश की और एक आहुति दी जाती है। यह सब प्रवर्ग्य कर्म्म है। यह सब यजमान को नूतन जन्म पाने में सहायता करता है। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है—'घर्माहुति से यजमान देवयोनि अग्नि से देवता के रूप में उत्पन्न होते हैं।' प्रवर्ग्य के बाद उपसत् होता है। उपसत् इष्टियाग है, देवता अग्नि सोम और विष्णु

हैं। आहुति का द्रव्य आज्य है। असुरों ने तीनों लोकों को जीतकर उन्हें सोने, चांदी और लोहे की दीवारों से घेर दिया था। इस तरह उन्हों ने मानो दुर्ग बनाया था। देवता उन तीनों लोकों के बाहर आकर धन्ना देकर पड़ रहे। वहां से उन्होंने असुरों के मारने के लिए जो बाण छोड़ा था उस का नाम उपसद् था। उप=समीप में-सद्=आसन्न हो कर। इस बाण में अग्नि, सोम और विष्णु ये तीन देवता अवस्थित थे। इस त्रिपुर जय कहानी को सुनकर आप लोग पुराण की 'त्रिपुरजय' की बात सोच रहे होंगे।

दूसरे दिन दोपहर तक प्रवर्ग्य और उपसत् का अनुष्ठान होजाता है, शामको फिर इन दोनों का अनुष्ठान होता है। उपसत् के समय असुरों को जीतने के लिए देवताओं के संधि बन्धन की तरह तानूनपत्र करना होता है और जलका छींटा देकर सोमका आप्यायन, निह्णव और अर्चन करना होता है, तीसरे दिन भी सुबह शाम इन्हीं अनुष्ठानों को करना होता है। तीसरे दिन दोपहर को सोमयाग के लिए महावेदि बनाई जाती है। अभी सोमयाग में बहुत देर है।

चौथा दिन-सवेरे सवेरे ही दो बार प्रवर्ग्य और दो बार उपसत् करके और काम शुरू किया जाता है। पहले अग्नि-प्रणयन होता है। ऐष्टिक वेदि की आहवनीय से अग्नि लाकर उत्तर वेदि की नाभि में रक्खी जाती है, फिर यही अग्नि सोम-यज्ञ की आहवनीय समझी जाती है। पुरानी आहवनीय गार्हपत्य होजाती है। अग्नि लेजाते समय होता मन्त्रपाठ करता है। फिर हविर्धान प्रवर्त्तन शुरू होता है। दो छप्पर की बैल-

गाड़ी को हविर्धान कहते हैं, सोमयज्ञ की प्रधान हवि सोम है, यही सोम इस गाड़ी पर रक्खा जाता है, इसीलिए इस गाड़ी को हविर्धान कहते हैं। यजमान की पत्नी गाड़ी के धुरे पर घी मल देती है, एक गाड़ी को अध्वर्य्यु, दूसरी को प्रतिपस्थाता महावेदि की ओर चलाते हैं, गाड़ी घर्घर करके चलने लगती है. होता और यजमान मन्त्रपाठ करते रहते हैं। महावेदि के पास पहुँच कर दोनों गाड़ियां पास पास खड़ी करदी जाती हैं और उन पर चँदोवा तान दिया जाता है, इस चँदोवे को हविर्धान मण्डप कहते हैं। उस से पश्चिम की ओर एक चँदोवा ताना जाता है. उसे सदःशाला कहते हैं और महावेदि की बगल में दो छोटे छोटे घर बनाये जाते हैं, उन्हें आग्नीध्रीय और मार्जालीय कहते हैं। सदःशाला में छः और आग्नीध्रीय में एक-कुल सात धिष्ण्य तयार किये जाते हैं धिष्ण्य का अर्थ है अग्नि-स्थान। इनके पास सोमाहुति के समय ऋत्विक् मन्त्र पढ़ते हैं। धिष्ण्य के लिए भी प्राचीन वेदि की आहवनीय से अग्नि लाकर आग्नीध्रीय धिष्ण्य में रखनी होती है। दूसरे दिन इसी अग्नि से और धिष्ण्य जलाई जाती हैं। धिष्ण्य के लिए अग्नि लाने के बाद सोम लाया जाता है। आप को याद होगा कि दूसरे दिन सोम खरीद कर प्राचीन वेदि के पूर्व में लकड़ी के आसन पर रख दिया गया था, दो बार जल का छींटा देकर उसे ताज़ा रक्खा गया था। आज उसी सोम को उस स्थान से उठाकर पूर्व की ओर मुँह करके हविर्धान मण्डप में गाड़ी पर रख देते हैं। धिष्ण्य के लिए अग्नि और सोम लाने का नाम अग्निषोम प्रणयन है। सब कामों में होता को मन्त्र पढ़ने होते हैं।

अग्नि और सोम-दोनों को महावेदि पर स्थापन किया जाता है। बिना इन के सोमयाग हो ही नहीं सकता। अग्नि और सोम दोनों देवता हैं। अब इन के लिए एक पशुयाग होना ज़रूरी है। चौथे दिन पशुयाग किया जाता है। सिर्फ़ इष्टियाग से काम नहीं चलता। अग्नि और सोम के लिए जो पशु दिया जाता है उसे अग्निसोमीय पशु कहते हैं। पशु ख़ूब मोटा ताज़ा होना चाहिए। पशुमांस खाने से नरमांस खाया गया या नहीं इस तर्क का ज़िक्र पिछली दफ़ा हुआ था। पशुयाग का विवरण दिया जा चुका है। यूपच्छेदन से याग समाप्ति तक सभी काम उसी तरह किये जाते हैं। पशु याग के समाप्त होते होते शाम हो जाती है। दूसरे दिन सोमयाग होगा, इन तीन चार दिन में तो उसका आयोजनमात्र हुआ है। सोमयाग के लिए सोमलता को कूटकर उसका रस निकाला जाता है. उस के लिए जल चाहिए। चौथे दिन-आज शाम को जल लाकर रखना पड़ता है। सोने के जल से काम चल जाता है। बाजा बजाकर धूमधाम के साथ जलाशय से जल लाकर रक्खा जाता है। इस जल का भी एक नाम है। वसतीवरी। अप् शब्द स्त्री लिङ्ग है इस लिए उस का विशेषण वसतीवरी भी स्त्रीलिङ्ग है। इस वसतीवरी जल और हविर्धान में रखी सोमलता को रात को आग्नीध्रीय मण्डप में रखा जाता है और यजमान रातभर जग कर पहरा देता है।

पांचवां दिन-आयोजन करते करते चार दिन होगये। पांचवें दिन असल याग है। सोमलता कूट कर उस का रस निकाला जायगा और फिर उस में जल मिला कर आहुति दी

जायगी। सोम को कूट कर रस निकालने का नाम है अभि· षव। पूर्वाह्ण, मध्याह्न और अपराह्ण में तीन बार सोम का अभिषव और सोम की आहुति होती है। सोमाभिषव और सोमाहुति और उसके साथ होने वाले सब कर्म्मों का नाम सवन है। पूर्वाह्ण में प्रातःसवन, मध्याह्न में माध्यन्दिन सवन, अपराह्ण में तीसरा सवन। सोमयाग के साथ एक पशुयाग भी होता है। चौथे दिन–कल भी–एक पशुयाग हो चुका है। आज और एक पशुयाग होगा। इस पशुयाग का नाम सवनीय पशुयाग है। तीन सवनों में तीन पशुयाग नहीं होते दिन भर में एक ही पशु के अंगों का विभाग करके तीनों सवनों में आहुति दी जाती है। पशुयाग के साथ पुरो· डाश याग भी होता है। सवनीय पशुयाग में पुरोडाश के सिवा और भी कई द्रव्यों की आहुति दी जाती है। जैसे धान करम्भ, परिवाप और पयस्या। धान=घी में भीजे जौ, करम्भ= घी में पके जौ के सत्तू, परिवाप=घी में पके चावल, दूध में दही मिला कर पयस्या बनाई जाती है। सोमरस, पशुमांस और भुने हुए जौ का नाम सुनकर भैरवीचक्र के पञ्चमकार के अन्तर्गत मद्य, मांस और मुद्रा की आप को याद आ· गई होगी।

पहले दिन शाम को बसतीवरी जल लाकर रक्खा गया था और यजमान ने रात भर जग कर पहरा दिया था। बहुत तड़के वह ऋत्विगों को जगा देता है, होता उठ कर प्रातरनु· वाक नामक ऋक् मन्त्र पढ़ने लगता है, अग्नि, उषा और अश्विद्वय इन मंत्रों के देवता हैं। बहुत से मंत्र पढ़े जाते हैं।

पक्षी के बोलते ही मन्त्र पाठ समाप्त होजाता है। सौ सौ और कभी हज़ार हज़ार मंत्र पढ़ने पड़ते हैं। बहुत से मंत्रों के पाठ से यज्ञेश्वर प्रजापति प्रसन्न होजाते हैं। मंत्रपाठ के बाद यजमान, उस की स्त्री, कई ऋत्विक् और परिचारक साथ जाकर जलाशय से जल लेने जाते हैं। कलसे में जल लाते हैं। इस जल का नाम है एकधना। पिछले दिन शाम को बसतीवरी लाया गया था, आज सुबह एकधना लाया गया। इन दोनों जलों को थोड़ा थोड़ा मिला कर तीसरा जल बनाया जाता है, उसे निग्राभ्य कहते हैं। वसतीवरी, एकधना और निग्राभ्य ये तीनों जल सोम रस बनाने के काम में आते हैं।

अब सोमाभिषव अर्थात् सोम को कूट कर रस निकालने का काम शुरू होता है। पहले दिन हविर्द्धान गाड़ी के नीचे चार गढ़े खोद रक्खे जाते हैं, इन गढ़ों को उपरव कहते हैं। गढ़ों पर तख्ते रख कर गोचर्म बिछाई जाती है, उस पर सोमलता के टुकड़े रक्खे जाते हैं, पत्थर से कूट कर फिर रस निकाला जाता है, पत्थर की चोट से उपरव में से गम गम शब्द होता है। अध्वर्यु और तीन ऋत्विक् पत्थर हाथ में लेकर रस निकालते हैं। सोम के टुकड़े बीच बीच में निग्राभ्य जल में गोता देकर सरस बनालिये जाते हैं। जब तक छिलका न छूटने लगे उस समय तक रस निकाला जाता है। तीनों सवनों पर इसी तरह किया जाता है। प्रातःसवन और माध्यन्दिन सवन में अधिक रस की ज़रूरत होती है। इसी लिए आधे के क़रीब सोम का रस प्रातः सवन के समय निकाल लिया जाता है। माध्यन्दिन में भी जो

बचा अंश होता है उस का रस निकाल लिया जाता है। एक बड़ासा टुकड़ा तीसरे सवन के लिए रक्खा रहता है उस में से जितना रस निकलता है वही तीसरे सवन के लिए काफ़ी होता है। इस तरह निकाला हुआ रस वसतीवरी और एकधना इन दो जलों में मिलाकर आहुति के योग्य बनाया जाता है रस रखने के लिए लकड़ी के तीन बड़े बड़े पात्र होते हैं। उन के नाम आधवनीय द्रोणकलश और पूतभृत् है। आधवनीय में वसतीवरी और एकधना जल डालकर सोम रस मिलाया जाता है अब इस जलको छानने की ज़रूरत होती है। द्रोणकलश के मुँह पर मेंढ़े के बालों का छन्ना रखकर आधवनीय का जल छान लिया जाता है। इस तरह छान लेने पर सोमरस शुद्ध होजाता है। छने हुए सोम को पवमान सोम कहते हैं। इस विशुद्ध सोम रस का आधा भाग द्रोणकलश में और आधा पूत-भृत् में रखदिया जाता है जब पूतभृत् में रक्खा जाता है तब एक आडम्बर रचा जाता है-उसे फिर सुनायँगे। सोमयाग में बहुत से देवताओं को आहुतियाँ दीजाती हैं एक आहुति में जितना सोमरस लिया जाता है उसे ग्रह कहते हैं। छोटे छोटे पात्रों में लेकर सोमरस की आहुति दीजाती है एकपात्र में एक बार जितना सोमरस आता है वही ग्रह कहाता है। तीन तरह के पात्रों की ज़रूरत होती है। पहली श्रेणि के पात्रों को तो पात्र ही कहते हैं जो गिनती में ग्यारह होते हैं। दूसरी श्रेणि के पात्रों का नाम स्थाली है, गिनती में चार। तीसरी श्रेणि के

पात्रोंका नाम चमस है ये गिनती में दस होते हैं। अच्छा अब याग आरम्भ होता है।

(१) पहले प्रातःसवन होता है। आरम्भ में सूर्य्य के लिए आहुति दीजाती है। सूर्य्य निकलने से पहले ही अध्वर्यु एक पात्र में थोड़ासा रस लेकर उत्तर वेदि की नाभि में रक्खी आहवनीय अग्नि में डाल देता है। यह याग नहीं-होम है। अध्वर्यु खुद ही यजुर्मन्त्र पढ़ कर आहुति देता है। उपांशु=धीरे से मन्त्र पढ़ कर होम किया जाता है इसलिए इसे उपांशु होम कहते हैं जो रस दिया जाता है उसे उपांशुग्रह कहते हैं। जिस पात्र में रस लेकर आहुति दीजाती है उसे उपांशु-पात्र कहते हैं सूर्योदय होने पर सूर्य के लिए ही अन्तर्याम होम होता है। यह भी होम ही है अन्तर्याम पात्र में अन्तर्याम ग्रह लेकर उसे यजुर्मन्त्र के साथ अग्नि में छोड़ा जाता है। इस होम के बाद ऋत्विक् महावेदि के बाहर आकर पूतभृत् में डालने के लिए सोम को छानते हैं। द्रोणकलस में वह पहले से ही छना हुआ रखा रहता है। पूतभृत् में छानते समय कुछ आडम्बर करना पड़ता है। एक ओर सोम छाना जाता है, दूसरी ओर उसी पवमान सोम के लिए उद्गाता, प्रस्तोता और प्रतिहर्त्ता ये तीनों सामगायी ऋत्विग् सामगान करते रहते हैं। इस गान का नाम वहिष्पवमान स्तोत्र है। महावेदि के बाहर आकर गाया जाता है इसलिए उसका नाम वहिष्पवमान स्तोत्र है। इसके बाद तीन जोड़ी देवताओं के लिए तीन द्विदैवत्य आहुतियाँ दीजाती है। पहली आहुति इन्द्र और वायु के लिए, दूसरी मित्र और वरुण के लिए, तीसरी आहुति

दोनों अश्वियों के लिए। अध्वर्यु क्रम से ये तीनों आहुतियां देता है। यह होम नहीं है, अब बाक़ायदा याग शुरू होगया। होता का सहकारी मैत्रावरुण अनुवाक्यामन्त्र और होता स्वयं याज्यामन्त्र पाठ करता है। वषट्कार के बाद अध्वर्यु आहुति देता है। याग के बाद वही हविःशेष भक्षण होता है। आहुतिदाता अध्वर्यु और वषट्कर्त्ता होता दोनों एक साथ प्रत्येक ग्रह (आहुति) का शेषांश पान करते हैं। पान की ज़रूरत नहीं है सूँघने से ही पान होजाता है, होंठ छुआ देने से ही कामचल जाता है। उसके बाद शुक्रग्रह और मन्थिग्रह की आहुतियां हैं। दोनों इन्द्र के लिए हैं, अध्वर्यु शुक्रग्रह और प्रतिप्रस्थाता मन्थिग्रह को लेकर आस पास खड़े होजाते हैं, अनुवाक्या और याज्या पाठ के बाद वषट्कार के समय अग्नि में छोड़ देते हैं। होमकर्त्ता और वषट्कर्त्ता एक साथ ग्रहशेष पान करते हैं। इस समय सूँघने से काम नहीं चलता। पीना ही होता है. शुक्रमन्थि की आहुतियां के बाद यह कहना होता है "निरस्तः शण्डः निरस्तो मर्कः" मतलब इस से शण्ड और मर्क दो असुर भगाये गये। आप लोगोंने असुरगुरु शुक्राचार्य्य के शण्डामर्क नामक दो पुत्रों की पौराणिक कहानी सुनी होगी उस कहानी की जड़ यहां छिपी हुई है।। शुक्र शब्द का अर्थ है उज्ज्वल। सोम का यह प्रसिद्ध विशेषण है। शुक्र पात्र में रखे सोमरस को ख़ासकर शुक्रग्रह कहा जाता है। इस शुक्रग्रह का किस तरह आकाशस्थ शुक्रग्रह Planet Venus के साथ एकीकरण होगया। आकाश में जितने तारे हैं उन सब में शुक्र उज्ज्वल है। फिर यह मन्थिग्रह कौन है ? महात्मा बालगङ्गा-

पर तिलक के अनुमान में एक ही ग्रह के दो नाम हैं-शुक्र और मन्थि एक प्रातःकालीन तारा Morning star और दूसरा Evening star सायंकालीन तारा।

सोमाहुति के लिए तीन तरह के पात्रों की बात कह आये हैं, एक तरह के पात्रका नाम है चमस। यजमान और सोलह ऋत्विगों में से ९ ऋत्विगों के लिए१०चमस रक्खे जाते हैं इसी लिए इन्हें चमसी कहते हैं। एक एक चमस एक एक चमसाध्वर्यु की सपुर्दगी में रहता है। चमसाध्वर्यु चमस में सोमरस भर कर चमासियों के हाथमें देता है। आज धिष्ण्य जलाये जाते हैं। एक एक धिष्ण्य पर एक एक चमसी बैठ जाता है। वहाँ वे अनुवाक्या और याज्या पाठ करके वषट्कार करते हैं। अध्वर्य्यु इन में से हर एक के हाथ से चमस लेकर उस का सोमरस अग्नि में डाल देता है। हविःशेष भोजन के लिए रख लिया जाता है। इस के बाद यजमान और ऋत्विक् सदःशाला में जाकर हविःशेष के सोम रस का पान करते हैं। सोमपान करने में भी बहुत कुछ तकल्लुफ़ है, पर हम उसे सुना कर आपको परेशान करना नहीं चाहते।

सोमाहुति के पात्रों में दो पात्रों का नाम ऋतुपात्र है। एक अध्वर्य्यु के लिए और एक प्रतिप्रस्थाता के लिए। ऋतुपात्र छः को भरकर अध्वर्य्यु छः देवताओं के लिए छः बार और प्रतिप्रस्थाता भी छः देवताओं के लिए छः वार सोमाहुति देता है। कभी तो ऋत्विक् और कभी होता याज्या पाठ करते हैं। आहुति के बाद आहुति देनेवाले और वषट्कर्त्ता हविःशेष पीते हैं।

आप लोग घबरा रहे हैं पर घबराने से काम न चलेगा।

प्रातःसवन की प्रधान आहुति की ही बात अभी ख़त्म नहीं हुई। प्रधान आहुतियां तीन हैं। उन के नाम ऐन्द्राग्न, वैश्वदेव और उक्थ्य। आहुति के समय याज्यामंत्र से पहले एक ऋक्मंत्र पढ़ा जाता है जिसे अनुवाक्या मन्त्र कहते हैं। यह साधारण नियम है। किन्तु इन तीन आहुतियों के याज्यामंत्र से पहले वहुत से ऋक् मंत्र पढ़े जाते हैं इन मंत्रों का नाम शस्त्र है। इन मंत्रों में देवता की तारीफ़ की गई है। इसी से इनका नाम शस्त्र है। होता, मैत्रावरुण ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक इन चार ऋत्विगों को शस्त्रपाठ करने का अधिकार है। शस्त्रपाठ से पहले उद्गाता, प्रस्तोता और प्रतिहर्त्ता ये तीन सामगायी ऋत्विक् सामगान करते हैं, इसे स्तोत्रगान कहते हैं। पहले स्तोत्रगान और फिर शस्त्रगान होता है सदःशाला में गूलर की एक लकड़ी गाड़ी जाती है। यह आपको मालूम ही है, इसे औदुम्बरी कहते हैं। स्तोत्रगान के समय गायक औदुम्बरी को छूकर गान करते हैं। स्तोत्रगान और शस्त्रपाठ के कुछ छोटे मोटे नियम हैं। जो शस्त्रपाठ करते हैं वे अपनी धिष्ण्य के पास पूर्व की ओर मुँह करके बैठते हैं; जो आहुति देते हैं वे शस्त्रपाठ करने वाले को पीछे कर के हाथों और पांवों पर ज़ोर देकर चौपाये की तरह अग्नि के सामने पड़े रहते हैं। शस्त्रपाठक पहले तो 'सुमत् पद् वक् दे पिता मातरिश्वा' आदि एक मन्त्र का मन मन में जप करते हैं। उस के बाद वे आहुति देने वाले का आवाहन करते हैं और आहाव मंत्र का पाठ करते हैं-प्रातःसवन का आहाव मन्त्र शंसावोम् है। मतलब-हम दोनों शस्त्रपाठ करते हैं। आहुति देने वाला

जवाब में कहता है 'शंसामोदेवोम्' अर्थात् तुम पाठ करो इस से आमोद होगा। इस उत्तर का नाम प्रतिगर है। इसके बाद शस्त्रपाठक तूष्णींशंस नामक और एक मंत्र का मन में पाठ करते हैं। प्रातःसवन का तूष्णींशंस- भूरग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः' है। इसके बाद शस्त्रपाठक शस्त्रपाठ में लग जाते हैं। शस्त्र में ऋग मंत्र हैं किन्तु उन के साथ कुछ यजुर्मन्त्र भी पढ़ने होते हैं। इन्हें निवित् मंत्र कहते हैं। शस्त्रपाठ के बाद वे कहते हैं - "उक्थंवाचि" मतलब हमारे वाक्यों से उक्थ या शस्त्रपाठ होगया। अध्वर्यु उत्तर में कहता है 'उक्थशाः यज सोमस्य' उक्तपाठ हो गया। अब सोमाहुति के लिए याज्यापाठ करो। अध्वर्यु का आदेश पाकर शस्त्रपाठक याज्यापाठ करते हैं ये यजामहे से याज्यापाठ आरम्भ होता है फिर वौषट उच्चारण करना होता है। अध्वर्यु इसी समय सोम की आहुति देता है। शस्त्रपाठक फिर कहता है सोमस्य अग्ने वौषट् 'अग्ने' सोम भक्षण कर और उसे देवों को पहुँचा। दूसरी बार वौषट् उच्चारण का नाम अनुवषट्कार है अनुवषट्कार के बाद अध्वर्यु फिर थोड़ी सी सोमाहुति देता है। आहुति के बाद जो कुछ बचता है उसे आहुति देनेवाला और शस्त्रपाठक दोनों मिलकर पी लेते हैं शस्त्रपाठ के बाद सोमाहुति का यह साधारण नियम है। प्रत्येक आहुति के बाद चमसी सोमाहुति देते हैं और चमस के सोम का पान करते हैं।

ऐन्द्राग्न, वैश्वदेव और उक्थ्य इन तीन आहुतियों की बात आप ने पहले सुनी, दो ग्रहों की आहुति अध्वर्यु देता है, होता शस्त्रपाठ करता है, उक्थ्य ग्रह की तीन अंशों में आहुति दी जाती है।

शस्त्रपाठक क्रम से मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छा-वाक होते हैं। ये तीनों होता के सहकारी हैं।

प्रातःसवन समाप्त होगया। अब माध्यन्दिन सवन होगा। माध्यन्दिन सवन का अनुष्ठान प्रातःसवन से छोटा है। इस में न उपांशुहोम होता है, न अन्तर्याम होम, न द्विदैवत्य याग और न ऋतुग्रह याग ही। शुक्रग्रह और मंथिग्रह का याग होना है। उन के साथ चमसाहुति होती है। इन सब आहुतियों के बाद तीन प्रधान आहुतियां हैं। उन के लिए यथाविधि शस्त्र पाठ और स्तोत्रगान होता है। पहली दो आहुतियों के नाम हैं–मरुत्वतीय और माहेंद्र। स्तोत्रगान के बाद होता शस्त्रपाठ करता है, अध्वर्यु आहुति देता है। तीसरी आहुति उक्थ्य, तीन अंशों में दी जाती है। मैत्रावरुण, ब्राह्मणाच्छंसी और अच्छावाक शस्त्रपाठ करते हैं। बीच बीच में पहले की तरह चमसाहुतियां होती हैं।

तीसरा सवन और भी संक्षिप्त है। इस में उपांशु और अन्तर्याम होम नहीं होता, न द्विदैवत्य ऋतुग्रह ही होता है, शुक्रमंथि का भी इस में काम नहीं। इन सब के बदले में आदित्य, सावित्र और पात्नीवत ग्रहों की आहुतियां होती हैं। स्तोत्रगान और शस्त्रपाठ पूर्वक दो ही आहुतियां होती हैं—वैश्वदेव और आग्निमारुत। इन के बीच बीच में चमसाहुतियां होती हैं।

इन सब आहुतियों में सोमरस प्रायः खत्म होजाता है। जो कुछ बचा होता है उस में चावल या जौ मिला कर उन्नेता नामक ऋत्विक् सिर पर रख कर आहुति देता है। होता

याज्यापाठ करता है। इसका नाम हारियोजन ग्रह है। इस में शस्त्रपाठ नहीं होता। बस यहाँ सोमाहुति समाप्त होगई। पशुयाग के जो अङ्ग बचे हुए थे उन्हें निबटा कर तीसरा सवन समाप्त किया जाता है। यजमान और ऋत्विक् साम गान सुनते सुनते अवभृथ स्नान के लिए जलाशय पर जाते हैं। सोमयाग की चीज़ें जल में फेंक दी जाती हैं। वरुण देवता को पुरोडाश देकर यजमान सपत्नीक स्नान के बाद कपड़े बदलता है और दीक्षा के समय जो वेष बनाया था उसे भी त्यागता है। यजमान का इस समय सोमयज्ञ से पुनर्जन्म होगया पर अभी छुट्टी नहीं मिली है। अवभृथ स्नान के बाद यज्ञशाला में आकर अभी इष्टियाग किया जायगा। दीक्षा के दूसरे दिन प्रायणीय इष्टि-याग से कर्म्म आरम्भ हुआ था अब उदयनीय पर कर्म्म समाप्त होगा। प्रायण शब्द का अर्थ है--आरम्भ, उदयनका अर्थ है-समाप्ति। उदयनीय याग की पद्धति बिल्कुल प्रायणीय की तरह है। यज्ञ का आरम्भ और शेष एक ही से ढंग पर किया जाता है। ऐतरेय ब्राह्मण कहता है—'समस्त यज्ञ एक लम्बी रस्सी है, प्रायणीय और उदयनीय—इन दो इष्टियागों—की गांठ लगा कर इस रस्सी को मज़बूत किया गया है।'

आप लोग समझते होंगे अब छुट्टी मिली। पर छुट्टी अभी नहीं मिलेगी। इष्टियाग के बाद और एक पशुयाग करना होगा। बांझ गाय—वह नहीं तो बैल-से पशुयाग होगा। इसका नाम अनुबन्ध्य पशुयाग है। पशुयाग के बाद फिर मथकर अग्नि उत्पन्न कीजाती है। उस में एक इष्टियाग किया जाता है। इस का नाम उदवसानीय इष्टियाग है। इस याग में अग्नि के लिए

पुरोडाश दिया जाता है। अब सचमुच छुट्टी है, यजमान इष्टि-याग की समाप्ति के बाद शाम को देव यजन भूमि से मकान को लौट आता है।

अग्निष्टोम का जो विवरण दिया गया है, उसका क्रम आप को याद न रहा होगा। अच्छा, अब संक्षेप में उसे एक बार और सुन लीजिए। इस से आप को याद रखने में बहुत सुविधा होगी।

अग्निष्टोम में सोमाहुति में एक दिन लगता है, किन्तु उस से पहले चार दिनों में यज्ञ के अन्य कर्म सम्पादित होते हैं। पहले दिन यजमान सपत्नीक दीक्षा ग्रहण करता है और उसी सम्बन्ध में दीक्षणीय इष्टियाग करता है। दूसरे दिन पूर्वान्ह में यज्ञ का प्रारम्भसूचक प्रायणीय इष्टियाग होता है। बाद को खरीद कर यज्ञशाला में सोम लाया जाता है और सोमकी संबर्द्धना में आतिथ्य इष्टियाग किया जाता है। आतिथ्य के बाद पूर्वान्ह में प्रवर्ग्य यज्ञ और उपसद् इष्टियाग, इसी समय तानूनप्त्र द्वारा यजमान और ऋत्विगों का सन्धिबन्धन होता है। उपसद् के साथ सोम पर जल का छींटा देकर आप्यायन और सोम की पूजा के लिए निन्हव का पाठ। उस दिन शाम को भी प्रवर्ग्य और उपसन् होता है। तीसरे दिन पूर्वान्ह और अपरान्ह में प्रवर्ग्य और उपसत् होते हैं। बीच में महावेदि बनाई जाती है। चौथे दिन पूर्वान्ह में ही दो बार प्रवर्ग्य और दो बार उपसत् कर के उत्तर वेदिमें अग्नि-स्थापन होता है। इसी अग्नि में सोमाहुति होती है। अग्नि स्थापनके बाद सोम रखने के लिए दो गाड़ियां-हविर्धान शकट लाई जाती हैं और महावेदिके

पास खड़ी की जाती हैं। फिर अग्नि और सोम प्रणयन-अर्थात् धिष्ण्य जलाने के लिए अग्नि लाई जाती है और पेष्टिक वेदि से सोम लाया जाता है। अग्नि और सोम की संवर्द्धना के लिए अग्निष्टोमीय पशुयाग होता है। शाम के बाद वसतीवरी जल लाया जाता है। पांचवें दिन सोमयाग होता है। सुबह होते ही होता प्रातरनुवाक् मंत्र पढ़ते हैं और ऋत्विक् एक-धना जल लाते हैं। इसके बाद सवन आरम्भ होता है। प्रत्येक सवन में सोम का अभिषव होता है। अर्थात् निग्राभ्य के जल में सोम को छान कर वसतीवरी और एक धना में उसे मिला दिया जाता है, बाद को छानकर द्रोणकलस और पूतभृत भर लिये जाते हैं। भिन्न भिन्न पात्रों, थालियों और चमचों में भर कर सोम की आहुतियां दी जाती हैं। आहुतियां अनेक हैं। और आहुतियां तो संक्षिप्त हैं किन्तु प्रधान आहुतियों में कुछ आडम्बर है। प्रधान आहुति के पहले सामगायी ऋत्विक् मिल कर स्तोत्र गान करते हैं और होता या उसके सहकारी ऋत्विक् शस्त्रपाठ करते हैं। एक एक शस्त्र में बहुत सी ऋक् होती हैं। शस्त्रपाठ के बाद सोमाहुति और सोमपान होता है, इस के बाद चमसाहुति और चमसपान होता है। तीनों सवनों में इसी तरह होता है। फिर भी प्रातःसवन से माध्यन्दिन सवन संक्षिप्त है तृतीय सवन और भी संक्षिप्त है। फिर एक पशु-याग होता है, इसका नाम सवनीय पशुयाग है।

तीन सवनों के बाद सपत्नीक यजमान का अवभृथ स्नान होता है। वहां वरुण को पुरोडाश देकर यज्ञशाला में आकर यज्ञ-समाप्तिसूचक उदयनीय इष्टियाग किया जाता है। इसके बाद

अनुबन्ध्य पशुयाग होता है। पशुयाग के बाद मथकर नई आग निकाली जाती है और उस में उद्वसानीय इष्टियाग करके यज्ञ समाप्त कर दिया जाता है।

अग्निष्टोम यज्ञ में बहुत खर्च होता है यह बात पहले ही कह चुके हैं। कमसे कम सौ गायें दक्षिणा में देनी होती हैं। ऋत्विकों का भाग इस तरह होता है-ब्रह्मा, उद्गाता, होता, अध्वर्यु इन चार प्रधान ऋत्विकों को बारह बारह गायें दी जाती हैं कुल ४८। ब्राह्मणाच्छंसी प्रस्तोता, मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता इन चार को छे छे गायें दी जाती हैं कुल २४। पोता प्रतिहर्त्ता अच्छावाक् और नेष्टा को चार चार गायें कुल १६। अग्नीत्, सुब्रह्मण्या, ग्रावस्तुत और उन्नेता को तीन तीन कुल १२। इस तरह कुल सौ गायें दक्षिणा में दी जाती हैं। इन के सिवा थोड़ा सा सोना, कुछ घोड़े, वस्त्र, सत्तू और तिल आदि भी दक्षिणा में दिये जाते हैं। चमस्याध्वर्यु भी दक्षिणा पाते हैं। माध्यन्दिन सवन के समय दक्षिणा दी जाती है। अग्निष्टोम का विवरण यहां समाप्त होता है। आपने धीरज से सुन लिया, आपकी जय हो।

अग्निष्टोम के बहुत से अङ्ग हैं उनमें उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र के संबंध में, थोड़े में कुछ कहना चाहते हैं। इनकी पद्धति भी अग्निष्टोम जैसी ही है। कहीं कहीं कुछ विशेषविधि है। पहले उक्थ्य याग को लीजिए। अग्निष्टोम के प्रातः सवन में पांच शस्त्र होते हैं, होता के दो, उसके तीन, सहकारियों के तीन। माध्यन्दिन सवन में भी पांच शस्त्र होते हैं-होता के दो और उसके सहकारियोंके तीन। तीसरे सवन में शस्त्रों की

संख्या दो है, होता ही दो शस्त्र पाठ करते हैं, सहकारी नहीं। इस तरह अग्निष्टोम यज्ञ में तीन सवनों में शस्त्रों की संख्या बारह हुई। प्रत्येक शस्त्र से पहले स्तोत्रगान होता है इसलिए स्तोत्र संख्या भी बारह हुई। आनुषङ्गिक सवनीय पशुयाग में एक पशु होता है, उसे सवनीय पशु कहते हैं, अग्नि के लिए एक बकरा दिया जाता है। यह तो हुआ अग्निष्टोम। उक्थ्य यज्ञ के प्रातःसवन और माध्यन्दिन सवन अग्निष्टोम की तरह ही होते हैं। तीसरे सवन में होता के दो शस्त्रों के बदले उस के सहकारी मैत्रावरुण ब्राह्मणाच्छंसी और आच्छावाक-इन तीन ऋत्विकों के तीन शस्त्र होते हैं इस तरह प्रत्येक सवन में शस्त्र संख्या पाच हुई, तीन सवनों में पंद्रह होती है। जब शस्त्र पंद्रह हुए तब स्तोत्र भी पंद्रह हुए। सवनीय पशु दो होते हैं एक बकरा अग्नि के लिए और एक बकरा अग्नि और इन्द्र दोनों के लिए। इसके बाद षोडशी यज्ञ है। इसमें उक्थ्य यज्ञ के पंद्रह शस्त्र तो होते ही हैं, उन के सिवा और एक शस्त्र होता है कुल संख्या सोलह होती है। इसलिए स्तोत्रसंख्या भी सोलह ही हुई। सोलह संख्या से ही यज्ञ का नाम षोडशी है। इसमें सवनीय पशु तीन होते हैं अग्नि के लिए एक बकरा इन्द्र और अग्नि के लिए एक बकरा तथा इन्द्र के लिए एक मेंढ़ा। इसके बाद अतिरात्र यज्ञ है। ऊपर के यज्ञ दिन में ही होते हैं रात्रि में कोई काम नहीं होता। आतिरात्र यज्ञ में षोडशी में जितना काम होता है उसके सिवा कुछ रात्रि कृत्य भी है इसी लिए इसका नाम अतिरात्र है, रातमें तीन बार सोमाहुति होती है। हर बार चार शस्त्र होते हैं, होता का एक, उस के

सहकारी तीन ऋत्विकों के तीन इस तरह तीन बार के बारह शस्त्र होते हैं । रात के पिछले पहर में होता और एक शस्त्र का पाठ करता है । इस तरह षोडशी के शस्त्रों के साथ इस के तेरह शस्त्र जोड़ने से कुल संख्या उन्तीस हुई । अतिरात्र में कुल शस्त्र उन्तीस हुए । स्तोत्र भी उन्तीस हुए, सवनीय पशु चार होते हैं अग्नि का एक बकरा, इन्द्राग्नि का एक बकरा, इन्द्र का मेढ़ा और इन के सिवा सरस्वती के लिए भी एक बकरा इस तरह चार पशु ।

अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, अतिरात्र, ये सारे सोमयज्ञ एक दिन में ही समाप्त होजाते हैं । दीक्षा में, ठीक ठाक में, आनुषङ्गिक इष्टि याग में कई दिन लग जाते हैं, किन्तु असल सोमयाग में एक ही दिन लगता है । एक दिन में ही तीनों सवन होजाते हैं । किन्तु बड़े बड़े सोमयज्ञों में कई दिन लगते हैं । बारह दिन या इससे अधिक दिन जिस यज्ञ में लगते हैं उसे सत्र कहते हैं । द्वादशाह नामक सत्र में बारह दिन लगते हैं, गवायन नामक सत्र में एक वर्ष लगता है । नैमिषारण्य में कुलपति शौनकने कई वर्षों में समाप्त होने वाले सत्र का अनुष्ठान किया था यह पौराणिक कथा आपने सुनी ही होगी । इन बहुत दिनों तक चलने वाले सत्रों में रोज़ सोमयज्ञ किया जाता है, रोज़ सोमका अभिषेक, सोम की आहुति और उस के साथ पशुयाग आदि होते हैं । द्वादशाह यज्ञ में पहले और अन्तिम दिन अतिरात्र यज्ञ होते हैं, बीच के दिनों में किसी दिन अग्निष्टोम किसी दिन उक्थ्य और किसी दिन षोडशी आदि यज्ञ होते हैं । साल भर में होने वाले गवायन सत्र में

भी इसी तरह होता है-पहले दिन अतिरात्र, अन्तिम दिन अतिरात्र, बाक़ी दिनों में अग्निष्टोमादि याग। संवत्सर को दो भागों में बांटा जाता है, पहले छै मासों में यज्ञ के जो पर्याय होते हैं दूसरे छै मासों में उन पर्यायों को उलट दिया जाता है, इस तरह साल के दोनों भागों का बिम्ब प्रतिबिम्ब Symmitiical रूप कर दिया जाता है। इन सब की आलोचना की ज़रूरत नहीं है। अब ज़्यादा बात बढ़ाने से हमें गालियां खानी पड़ेंगी। सोमरस में मादकता होती है किन्तु हमने सोमयज्ञ का आप को जो विवरण सुनाया है उस से आप को उन्माद की जगह अवसाद ही मिला है। अब दो तीन मज़ेदार बातें सुना कर हम आप से विदा माँग लेंगे।

पहले ज़िक्र आ चुका है कि सोमलता का इस समय पता नहीं। कोई नहीं जानता सोमलता किसे कहते हैं। वेद और अवेस्ता दोनों शास्त्रों के विवरण से मालूम होता है कि वह एक तरह की ओषधि है। ओषधि कहने से उस पौधे का ग्रहण होता है जो वर्षजीवी हो। जो पौधा एक वर्ष में ही पैदा होता है, बढ़ता है और मर जाता है। दूसरे साल में फिर नये सिरे से पैदा होता है। सोम को ओषधिपति कहा गया है। सोम या सोम-रस का रङ्ग कुछेक लाल कुछेक सुनहरा होता है। सोम का प्रसिद्ध विशेषण शुक्र है, शुक्र यानी उज्ज्वल, उसके रस में मिठास थी। उसका दूसरा नाम मधु था। वेद में उसे कई जगह मधु कहा गया है। इन सब से बढ़ कर उसे पीकर नशा होता था, बातचीत में स्फूर्ति आती थी, शरीर में बल आता था। देवता उसे पीते थे, इन्द्र ने सोम पीकर वृत्र को मारा

था। यहां तक कि उस से रोग भी दूर होते थे। ज्यादा क्या कहें वेद की भाषा में सोम से अमरता मिलती थी। देवता सोम पीकर ही अमर हुए थे। ऋषि भी अमर होने के लिए उसे पीते थे। अमरता मिल जाती थी, इसी लिए सोमयज्ञ का इतना माहात्म्य था। सोम का दूसरा नाम अमृत है। यह सोम मनुष्यलोक में ओषधियों का राजा है, स्वर्ग में वह देवताओं का भी एक राजा है, ब्राह्मण ग्रन्थों में उसे बार बार सोमराज कहा गया है। राजा सोम जब यज्ञशाला में आते हैं तब उनके सत्कार के लिए आतिथ्य इष्टियाग किया जाता है। एक समय तो देवता भी उन्हें न पासकते थे। देवता उनके लिए बहुत लालायित थे, उनका पता पाते ही वे चालाकी से उन्हें उड़ा लाये। वैदिक साहित्य सोम लाने की आख्यायिका से भरा हुआ है। स्वर्ग में कहीं ऊँची जगह पर सोम छिपे हुए थे, सुपर्ण या श्येन (बाज़) पक्षी देवताओं के लिए उन्हें वहां से लाया था। ऋग्वेद संहिता में बहुत जगह यह उपाख्यान मिलता है, पुराणों में यही उपाख्यान बदल कर गरुड़ के अमृत-हरण के रूप में आगया। वेद में लिखा है, सोम, जल में—समुद्र में था। पुराणेतिहास में लिखा है सोम या अमृत को निकालने के लिए समुद्र मथने की ज़रूरत हुई। देवता और असुर दोनों ही अमृत पाने के लिए समुद्र मथने लगे। उस में से बहुत सा माल निकला बाद को सोम या अमृत निकला। देवताओं ने असुरों को हराकर अमृत ले लिया, सिर्फ़ महादेव के हिस्से में विष आया। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यह आख्यायिका अनेक रूपों में मिलती है। सोम गन्धर्वों के पास था, कोई

पक्षी सुपर्णी या श्येनी उसे उड़ा लाया। वह सुपर्णी और कोई न था, स्वयं गायत्री थी। फिर एक जगह लिखा है देवताओं के पास सोम था देवताओं ने वाग् देवी को सोम लाने के लिए भेजा, स्त्रीप्रिय गन्धर्वों ने नंगी कुमारी वाग्देवी के लोभ में सोम को छोड़ दिया, वाग्देवी सोम को ले आई। सोमयज्ञ के आरम्भ में सोम की खरीदारी के नाम से इस का अभिनय किया जाता है-यह तो आप सुन ही चुके हैं। वाग्देवी और गायत्री एक ही हैं। गायत्री छन्दों में श्रेष्ठ है। देवताओं के मन्त्र ही वाणी हैं, और वेदों का सारभूत गायत्री वेद का श्रेष्ठ वाक्य है, गायत्री ही वाग् देवता है। स्वयं वाग्देवता को सोम लाना पड़ा था, उसने ही सोम लाकर देवताओं को अमर बनाया था। देवता सोमयाग करते थे, स्वयं प्रजापति सोमयाग करके प्रजा सृष्टि करते थे। विवस्वान् और त्रित आपत्य देवताओं के पान के लिए सोमरस तयार करते थे। आवस्ता शास्त्र में भी सोम का यही माहात्म्य लिखा है, उस की यही कहानी किसी न किसी रूप में मिलती है। आवस्ता शास्त्र में भी विवस्वान् और त्रितआपत्य के नाम प्रायः इसी रूप में मिलते हैं। ग्रीक शास्त्रों में भी यही उपाख्यान है; देवराज Zeus के लिए ईगल पक्षी मधु लाया था। जर्मन शास्त्रों में भी यह उपाख्यान मिलता है, देवराज Odhin ईगल का रूप धरकर मधु लाया था। यह ईगल पक्षी श्येन या सुपर्ण है, मधु सोम है। यह सोम सिर्फ़ वेदपंथियों के ही प्रधान देवता नहीं हैं, समस्त आर्य्य जाति के अतिप्रधान और अति प्राचीन देवता हैं। सोमयज्ञ आर्य्यजाति का प्राचीन-

तम जातीय अनुष्ठान है। और सब जगह तो इसका प्रचार जाता रहा पर बम्बई प्रदेश के कुछ पारसियों ने अभी तक इस प्राचीन अनुष्ठान का त्याग नहीं किया है।

यह सोम देवता कौन हैं? आप लोगों ने सोमलता को कभी देखा भी नहीं है। कोई आप से पूँछे कि सोम का अर्थ क्या है तो आप कह देंगे चन्द्र। ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण में सोम को चन्द्र ही लिखा है बार बार लिखा है कि सोम और चन्द्र एक ही हैं। ऋग्वेद संहिता के मन्त्रों में भी सोम के अर्थ में चन्द्र आया है-यह बात मान ली जा सकती है। ऋग्-वेद संहिता के दसवें मण्डल में एक प्रसिद्ध सूक्त है, सूर्य्य की बेटी सूर्या को उसका ऋषि बताया गया है, इस सूक्त में सूर्य्या के विवाह का ही वर्णन है। बड़ी भारी और गंभीर भाषा में इस सूक्त का आरम्भ हुआ है। "पृथ्वी सत्य से स्थिर है, द्युलोक सूर्य्य से रुका हुआ है, आदित्य ऋत के आश्रय से द्युलोक में अवस्थित हैं, सोम के बल से ही आदित्य बलीयान् हैं। सोम के बल से पृथ्वी बड़ी है। अथोनक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः—नक्षत्रों के पास ही सोम रहते हैं" नक्षत्रों के पास जो सोम रहते हैं-वह चन्द्र भी होसकते हैं. सोमलता को चन्द्र की पार्थिव मूर्ति भी माना जा सकता है किंतु ऋषि तुरन्त सम्हल कर कहते हैं-

"सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिबन्ति ओषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुः न तस्याश्नाति कश्चन॥"

सोम ओषधि को पीस कर लोग पीते हैं और समझते हैं हमने सोम पान किया, किन्तु ब्राह्मण जिस सोम की असलि-

यत जानते हैं उसे कोई भी नहीं पीसकता। फिर ज़ोर देकर कहते हैं-'न ते अश्नाति पार्थिवः' पृथ्वी का कोई भी उसे नहीं पी सकता। फिर कहा है-"यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत् आप्यायसे पुन." हे देव सोम, पान करने से तुम्हारा क्षय नहीं होता तुम्हारी वृद्धि ही होती है। यह सोम देवता हैं कौन ?

बात कुछ पहेली सी होगई है। पश्चिम के पण्डित अब तक इस भेद को नहीं खोल सके हैं। जर्मन पण्डित हिलिब्रान्त ज़ोर दे कर कहते हैं-चन्द्र ही आर्य जाति के प्रधान देवता थे, चन्द्र ही सोम हैं, ऋक् संहिता में भी सब कहीं सोम के अर्थ में चन्द्र का ही ग्रहण हुआ है। अन्य पण्डित कहते हैं-ऋक् संहिता में जहां कहीं सोम का उल्लेख है वहां सोमलता अभीष्ट है, बाद को उस में चन्द्रत्व आरोपित हुआ है. ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में तो वह बिल्कुल चन्द्र हो गई। पण्डितों में जब इस तरह चल रही है तब हम जैसे मूर्खों का चुप रहना ही ठीक है। किन्तु चन्द्र के साथ पार्थिव सोमलता का यह सम्पर्क किस तरह कल्पित हुआ, मानवविज्ञान की ओर से इस की कुछ आलोचना होनी ज़रूरी है।

प्रश्न यह है चन्द्र का और सोमलता का सादृश्य कहां है? बिल्कुल अन्दाज़ के सहारे ही इस का उत्तर देना होगा। संस्कृत साहित्य में अनेक स्थलों पर लिखा हुआ है कि सूर्य्य के अस्त होने पर सूर्य्य का कुछ तेज चन्द्र में प्रवेश करता है, कुछ ओषधियों में प्रवेश करता है, इसी लिए रात में चन्द्रमा उज्ज्वल होता है और कुछ ओषधियां भी चमकने लगती हैं। कोई कोई ओषधि वन की लता या वन के पौधे रात्रि में

उज्ज्वल होते हैं या Phosphoresce करते हैं। बात बिल्कुल अवैज्ञानिक नहीं है। वास्तव में चन्द्रमा का प्रकाश और चमकती लता का Phosphorescence सूर्य्य की किरण का ही रूपान्तर है। हिमालय पर्वत पर इस तरह की Phosphorescent ओषधियां हैं, कालिदास के समय से कवि लोग यह कहते आये हैं। पर्वत के लता गुल्मों की इस दीप्ति ने कालिदास के कविचित्त में एक भारी आघात पहुँचाया था। कुमारसम्भव के आरम्भ का ही-भवन्ति यत्रौषधयो रजन्यामतैलपूराः सुरतप्रदीपाः-श्लोक याद कर लीजिए। ओषधिपति सोमलता को अब तक किसी ने नहीं पहचाना था; किन्तु यह बात सम्भव है वह रात में चमका Phosphoresce करती हो। हम लोग देखते हैं संध्या से पहले आकाश में चन्द्र निष्प्रभ थे शाम के बाद अंधेरा गहरा होने पर आकाश में चन्द्रमा उज्वल होगये। पृथ्वी में सोमलता भी उसी तरह उज्ज्वल होगई, मानो एक के साथ दूसरे का कुछ सम्पर्क है। आकाश का चन्द्रमा क्रम से क्षय होता है, अमावस की रात में बिल्कुल दिखाई नहीं देता, किंतु दो दिन बाद उसकी क्षीण मूर्ति दिखाई देती है, क्रम से बढ़कर पूर्णिमा को पूरा चन्द्र आकाश को आलोक से भर देता है। यह चन्द्रमा कहाँ चला जाता है? देवता इसे पी जाते हैं-इसी से इसका क्षय होता है, किन्तु यह बिलकुल नष्ट होजाय ऐसी चीज़ नहीं है, यह फिर बढ़ता है, उसका आकार घट जाता है। वास्तव में यह लुप्त नहीं होता, यह अमृत स्वरूप है। सोमलता ओषधि है, अर्थात् वर्षजीवी उद्भिद् है सालभर में पैदा होता है, बढ़ता है, मर

जाता है । दूसरे वर्ष फिर पैदा हो जाता है, जंगली पौधा है, न कोई उसे लगाता है, न कोई उस की देख भाल करता है, वह मर कर भी नहीं मरता । दोनों ही स्वरूप से एक हैं, दोनों ही अमृतस्वरूप हैं । आकाश में जो ग्रहपति हैं, पृथ्वी पर वह ओषधिपति हैं । दोनों का स्वरूप एक है दोनों सोम हैं आकाश के नक्षत्र देवताओं के घर हैं-देवग्रहाणि वै नक्षत्राणि । देवता अपने अपने घरों में बैठ रहते हैं सोम घर घर घूमता है. देवता उसे पान कर लेते हैं । पानके बाद सोम का पात्र खाली हो जाता है, वह फिर भर जाता है । आकाश में नक्षत्रों में घूमते हुए जो छोटे छोटे ग्रह (Plant) हैं वे ही मानो छोटे छोटे सोमपात्र हैं, इन पात्रों में अमृत भरा हुआ है देवता इन ग्रहों को पूर्ण करके सोम पान करते हैं । पृथ्वी की सोमलता आकाश के सोम का प्रतिरूप है । यजमान और ऋत्विक् पात्र भर कर सोमरस का ग्रहपान करते हैं । सोमकी समाप्ति नहीं होती, इसी लिए तो उसका आप्यायन अनुष्ठान है ।

यह जो सोम देवता हैं, वह पहले आकाशविहारी चन्द्र ही थे, या पर्वत की सिर्फ़ लता ही थे वैज्ञानिक पण्डित इस का विचार करें, वेदपन्थी याज्ञिकों और यजमानों को इस विचार से विशेष प्रयोजन नहीं । वैज्ञानिक पण्डित टाइलर का स्वीकारोक्ति आप पहले ही सुन चुके हैं । Sacrifice has passed in the Course of religious history into transformed conditions, not only of the intention with which the worshipper performs it. किसी अनुष्ठान का ऐतिहासिक मूल्य कुछ ही हो, यजमान और याज्ञिकों के लिए यह

उद्देश intention ही बड़ी चीज़ थी और एकमात्र चीज़ थी। सोम देवता असल में कुछ हो याज्ञिक और यजमान उन्हें किस नज़र से और किस तरह देखते थे असल बात यह थी। याज्ञिकों के लिए सोम-"एषांदेव अमर्त्यः।' इनके स्तुतिगान से वेदसाहित्य भरा पड़ा है। यज्ञ के समय होता और उस के सहकारी उसकी प्रशंसा में मन्त्र पढ़ते हैं, ऋक्मंत्रों की आवृत्ति की जाती है। उद्गाता और उसके सहकारी साम मन्त्रो से उस की स्तुति करते हैं। ऋक् संहिता का नवाँ मण्डल उस की स्तुति से भरा हुआ है, ऋक्संहिता में जहां तहां उस का स्तोत्रगान किया गया है। ऋषि बड़े शौक़ से उसकी स्तुति करते हैं। यह अमर्त्यदेव, यह चिर नवीनशिशु, यह ज्योतिर्मय गन्धर्व आकाश के ऊपर अवस्थित है, वहीं से जगत् का निरीक्षण करता है, इस के शुभ्रतेज से द्युलोक और भूलोक ज्योतिर्मय हो रहा है वह खंभे की तरह द्युलोक को धारण किये हुए है, वह भूलोक को द्युलोक के साथ युक्त किये हुए है, उस ने सप्तसिन्धु से द्युलोक तक सब घेर रक्खा है। वह नवीन युवा विश्वजय के लिए पैदा हुआ है वह दिन में रूपवान् है, वह नर पर कृपालु है, वह जगत् की मानो आयु है। दिवोदास का बेटा प्रतर्दन कहता है— वह देवताओं में ब्रह्मा है, ब्राह्मणों में ऋषि है, पशुओं में महिष है, गिद्धों में श्येन है। वह 'ऋतस्य गोपा' सत्य की रक्षा करने वाला है, वह विद्वान् है, ऊपर से वह विश्व को देखता रहता है। ''ऋतस्य तन्तुर्विततः पवित्र आ जिव्हाया अग्रे वरुणस्य मायया' उसी के मायाबल से वरुणदेव के जिव्हाग्र पर सत्य धर्मका तन्तुसूत्र पवित्रता के

साथ फैल रहा है, कश्यप ऋषि के साथ हम भी उस को सम्बोधन करके कह सकते हैं-

ऋतं वदन् ऋतद्युम्न
सत्यं वदन् सत्यकर्म्मन्
श्रद्धां वदन् सोमराजन्
धात्रा सोम परिष्कृतः।
इन्द्रायेन्द्रो परिस्रव॥

हे ऋतद्युम्न, तुम सच बोलते हो, हे सत्यकर्म्मा, तुम सच्च बात कहते हो, हे सोम राजा, तुम श्रद्धापूर्ण वाक्य कहते हो, धाता से परिष्कृत होकर इन्द्र के लिए बरसो।

सत्यमुग्रस्य बृहतः
संस्रवन्ति संस्रवा।
सं यन्ति रसिनो रसाः
पुनानो ब्रह्मणा हरे।
इन्द्रायेन्द्रो परिस्रवः॥

सत्य तुम उग्र हो, तुम बृहत् हो, तुम्हारी रसधारा सब जगह मिली हुई है, हे हरि ब्रह्मवाक्य से पवित्र होकर तुम इन्द्र के लिये बरसो।

यत्रानु कामं चरणं,
त्रिनाके त्रिदिवे दिवः।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः
तत्र माममृतं कृधि।
इन्द्रायेन्द्रो परिस्रवः॥

ऊपर के उसी तीसरे नाक में, उसी तीसरे द्युलोक में,

जहां इच्छानुकूल विहार किया जाता है, जहाँ के रहने वाले ज्योतिष्मान् हैं, वहीं मुझे भी अमृत पद दो, इन्द्र के लिए तुम बरसो।

यत्र राजा वैवस्वतो
यत्रावरोधनं दिवः,
यत्रामूर्य्य ह्वती रापः
तत्रमाममृतं कृधि।
इन्द्रायेन्द्रो परिस्रव: ॥

जहां वैवस्वत राजा हैं, जहां द्युलोक का अवरोधद्वार है, जहां नदियां बहती हैं वहीं मुझे अमृत पद दो, इन्द्र के लिए तुम बरसो।

यत्र ज्योतिरजस्त्रं
यस्मिन् लोके स्वर्हितम्,
तस्मिन् मां धेहि पवमान
अमृते लोके अक्षिते।
इन्द्रायेन्द्रो परिस्रव: ॥

जहां सदा ज्योति रहती है, जहां स्वर्ग लोक है, हे पवमान सोम, उसी अक्षय अमृत लोक में मुझे ले चलो, इन्द्र के लिए तुम बरसो।

ईसाइयों का यज्ञ।

ईसाई लोग अपने देवता को खाते हैं, उन के लिए यह बात मशहूर है।

देवता खाने की बात हम ने पहले उठाई थी। Eucharistic Sacrifice के उपलक्ष में जो रोटी और शराब दी जाती है वह ईसा का मांस और ख़ून है, उन्हें खा कर ईसा का मांस और ख़ून खाया पिया समझा जाता है। ऐसा करने से ईसा के साथ ईसाइयों की एकात्मता हो जाती है, ईसाई ईसा बन जाते हैं, मनुष्य देवता बन जाते हैं। आप हँस कर कहेंगे कि एकात्मता करने का ऐसा सरल उपाय दूसरा नहीं है, ग्रास को चबा कर निगलने की तरह एकात्मता का यह उपाय भी अद्वितीय है।

पर हँसने से काम चलता नहीं, मानवतत्त्व के जानने वाले पण्डितों ने अनेक देशों से दृष्टान्त इकट्ठे कर के दिखाया है

कि देवता के साथ एकात्मता लाभ करने का यह उपाय कुछ ईसाइयों का निकाला हुआ नहीं है। देवता को आत्मस्थ करने का इसीतरह का एक उपाय अनेक देशों में आविष्कृत हुआ है।

एक मानवतत्वज्ञ पण्डित की उक्ति आपको सुनाना चाहता हूँ

'Sacrifice is primarily a sacramental meal at which the communicants are a deity and his Worshippers and the elements the flesh and blood of the sacred victims. Primitive tribes everywhere seem to regard themselves as related to their gods by the bond of kinship and every tribe has certain sacred animals which it regards as related to the tribal god by precisely the same bond. These sacred animals are probably a survival of the totem stage through which all civilised races seem to have passed.'

आप इस Totem की बात को जानते ही हैं। बहुत सी असभ्य जातियां अपने को किसी न किसी जन्तु का वंशधर मानती हैं उस जंतु को अपना ज्ञाति का समझती हैं उसकी पूजा करती हैं, यहां तक कि आचार व्यवहार मे भी उस का अनुकरण करती है। उस जन्तु को Totem कहते हैं जन्तु की जगह कोई पेड़ या और कुछ भी होसकता है। पुराण में वर्णित नागजाति, पक्षि जाति की बात आप को याद आयगी। वासुकि, तक्ष आदि नामों की कथा आप को याद आयगी, सम्पाति जटायु आदि पक्षियों की बात आप को याद आयगी, बालि, सुग्रीव आदि बन्दरों की और जाम्बवन्त आदि रीछों की बात आप को याद आयगी। जिस पशु से वंश चला समझा जाता है, उस की पूजा होती है। पण्डित कहते हैं इस तरह

बहुत जगह पशु देवता बन गये हैं । इस तरह पशु तो देवता हो जाता है और दूसरी ओर देवता और मनुष्य का ज्ञाति-सम्बन्ध पक्का होजाता है । वही परिडत कहते हैं यज्ञानुष्ठान Sacremental meal मात्र है। यज्ञ हो चुकने पर सब आदमी यज्ञ में मारे गये पशु का मांस खाते हैं इस से वे देवता के साथ एक होजाते हैं । पशु-वध यज्ञ का प्रधान अनुष्ठान नहीं है. सब का मिल कर पशु-मांस खाना ही उस का प्रधान अनुष्ठान है

'The significant part of a sacrifice is not the slaying of the victim but the sacrificial meal which follows. During this meal the life of the sacrificed animal with its mysterious nature is supposed to pass physically into the communicants, whereby the natural bond of union between the god and his votaries is sacramentally confirmed and sealed. The object is always to renew and strengthen the tie of kinship and friendship between the god and his worshippers.

यज्ञानुष्ठान के सम्बन्ध मे आज कल के परिडतों की यही 'थियरी' है इस 'थियरी' का समर्थन करने के लिए उन्होंने अनेक देशों से बहुत से दृष्टान्त इकट्ठे किये हैं । चीन से परे तक की उन्होंने दौड़ लगाई है । इस सिद्धांत में मतभेद भी ख़ूब है । इस Totem के सम्बन्ध में भी खासा टंटा है, कुछ परिडत कहते हैं कि समस्त असभ्य जातियां ही Totem मानती हैं । इस समय जो ख़ूब सभ्य हैं, उन के असभ्य पुरखा एक समय

'टाटम' मानते थे। कुछ पण्डित 'टाटम' का प्रसार कम करना चाहते हैं। विख्यात पण्डित फ़्रेज़र कहते हैं—

"We may say broadly that totemism is practised by many savage peoples whose complexion shades off from coal black through dark brown to red. With the somewhat doubtful exception of a few Mongoloid tribes in Assam, no yellow and no white race is totemic."

अर्थात् काले गन्दुमी और लाल रंग वाले मनुष्य 'टाटम' मानते हैं। सफ़ेद और पीले रंग वाले नहीं मानते। अच्छा 'टाटम' की बात अभी रहने दो, आओ पहले देवता खाने के दो एक दृष्टान्तों की आलोचना करें।

मेक्सिको में किसी समय नरयज्ञ होता था उन के प्राचीन देवताओं के नाम का उच्चारण करना बड़ा मुश्किल काम है। उन के एक देवता का नाम था-तेजकाटिल पोकास या इसी तरह का और कुछ। किसी बड़े आदमी के लड़के को पकड़ कर उस देवता को बलि दिया जाता था। कुछ समय तक बेचारे को देवता कह कर उसका मान किया जाता था, वह बिल्कुल मनुष्य और देवता होजाता था। आख़िर में उसे वध कर सब आदमी उस का मांस बांट कर खा लेते थे। मेक्सिको में हुइज़ि पूजलि नाम के एक और देवता भी थे। उनकी मैदा की मूर्त्ति बना कर सब खाते थे, मनमें सोचते थे कि देवता का मांस खारहे हैं। मिश्र देश के प्रधान देवता असिरिस का नाम आप लोगों ने सुना होगा। बैल को असिरिस की पार्थिव मूर्त्ति मान कर उस की पूजा की जाती थी। हमारी गौ जिस तरह भगवती है, मिश्र देश में बैल उसी तरह भगवान् थे। पर

मिश्र में इस देवता का वध करके उस का मांस सब लोग मिल कर खा जाते थे। Encyclopedia of Religion and Ethics इस प्रसङ्ग में कहती है--"From a very early stratum of religion comes the idea of feeding on the God" ग्रीकों और रोमानियों में भी यह देवता को खाने की प्रथा प्रचलित थी या नहीं, इस पर बहुत वादानुवाद हुआ है। वादानुवाद का कारण भी है। क्योंकि कट्टर ईसाई यह बात ज़ोर के साथ कहना चाहते हैं कि यह देवता को खाने वाली बात हमारे ईसाई धर्म का एक विशिष्ट अनुष्ठान है, और किसी धर्म में भी देवता को नहीं खाया जाता। जो वैज्ञानिक आलोचना के पक्षपाती हैं, वे इस बात को मानना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि यह सब देशों में और सब समाजों में भी है। इस लिए दोनों दलों में कोलाहल बढ़ जाता है उस कोलाहल का अन्त नहीं होता। देवता के उद्देश में पशु का वध करना और उसी पशु के मांस को खाना यह प्रचार बहुत देशों में है किन्तु वह पशु देवता है या नहीं, उस पशु में देवता अधिष्ठित रहते हैं या नहीं, उस में देवता की real presence है या नहीं, उस पशु को खाने से देवता को खाया जाता है या नहीं, देवता को आत्मसात् करके उस के साथ एकता प्राप्त होती है या नहीं इन्हीं बातों पर तर्क उठता है। ईसाई कहना चाहते हैं कि इस रूप में देवत्व पाने की प्रार्थना केवल हम ही करते हैं और लोग पशुमांस खाते हैं सिर्फ पेट भरने के लिए, देवता का प्रसाद पाकर अपना पेट भरने की व्यवस्था मात्र करते हैं। ईसाइयों में यह व्यापार एक गूढ़ रहस्य है, एक mystery है। अन्य

किसी जाति के धर्मानुष्ठान में यदि ऐसा कुछ होगा तो ईसाई लोग कहेंगे कि यह शैतान की करतूत है।

आज कल Mithraism को लेकर खूब आलोचना हो रही है। यही मिथ्र देवता प्राचीन पारसियों के बड़े पुराने देवता हैं। वेदपन्थियों के पुराने देवता मित्र से यह अभिन्न हैं। वेदों में जो मित्र है, आवेस्ता शास्त्र में वही मिथ्र हैं। हम इन्हें मित्र ही कहेंगे। वेद में यह आदित्यों में अन्यतम हैं, ऋग्वेद-संहिता में प्रायः सभी जगह इन्हें वरुण देवता के चिरसहचर-रूप में देखा जाता है—मानो मित्र और वरुण ये दोनों जुड़े हुए देवता हैं। भट्टि काव्य के "इत स्म मित्रावरुणौ किमेतौ" इस श्लोक को याद कीजिए। वनवासी राम और लक्ष्मण को देख कर लोग कहते थे कि ये क्या हैं? क्या मित्र और वरुण स्वर्ग से उतर कर वनों में घूम रहे हैं? सोमयज्ञ के प्रातःसवन में एक सोमाहुति मित्र और वरुण इन देवताओं की जोड़ी को ही दी जाती थी, यह बात हम पहले कह चुके हैं। ये मादक प्रिय न थे, उन की मादकता को मिटाने के लिए उन के सोम रस में दही मिलाया जाता था। वरुण को हमने अब भी याद रख छोड़ा है, वह जलाधिपति और पश्चिम दिशा के स्वामी हैं। किन्तु मित्र को हम करीब करीब भूल ही गये हैं। प्राचीन पारसी धर्म में मित्र और वरुण का स्थान और भी ऊँचा है। वरुण स्वयं अहुर मज़्द हैं—असुरों में श्रेष्ठ हैं, मित्र उन के सहचर हैं, मर्यादा में प्रायः वरुण के समान हैं। मित्रदेव की मर्यादा पारसी समाज में क्रमशः बढ़ गई थी। वह वरुणदेव के पुत्र और चिरसहचर थे। पतित मनुष्य पर करुणामय थे।

मित्रनाम से ही इस का परिचय मिलता है । वह मनुष्य के रक्षक- Saviour, Redeemer और Mediator हो गये थे। ईसा के साथ आप मित्र देवता की तुलना करें ।

इन मित्र देवता की पूजा पारसी समाज की हद को लांघ कर रोम साम्राज्य में भी जा पहुँची थी । आज कल उस के बहुत से निदर्शन आविष्कृत हुए हैं । फिलाडेलफिया शहर के प्रोफ़ेसर ने [illegible] Eucharist सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है । उन्होंने रोम साम्राज्य में मित्र-पूजा की आलोचना करते हुए लिखा है-

"[illegible] ng the [illegible] of the Black Sea, up [illegible] into the [illegible] then [illegible] then [illegible]ward, through Gaul [illegible] and of the Britons [illegible] army [illegible] through the [illegible] Roman [illegible] [illegible] remarkable parallelism [illegible] and the doctrines of Christianity has [illegible] deep surprise and has led some [illegible] mistakenly to view Christianity [illegible] of Mithraism."

लेखक ईसाई Divinity शास्त्र के अध्यापक हैं, वह कहते हैं, "Mistakenly" किन्तु बहुत से पण्डित ज़ोर के साथ कहना चाहते हैं कि रोमसाम्राज्य में ईसा की पूजा की तुलना में

मित्रपूजा की प्रतिपत्ति और प्रसार अधिक था। सम्राट कॉन्स-टेन्टाइन भी पहले मित्रपूजा के पक्षपाती थे, बाद को यह ईसाई हो गये। उन्होंने और उनके परवर्त्ती सम्राटों ने क़ानून के ज़ोर से और शरीर के ज़ोर से मित्रपूजा बन्द कर दी थी। मित्र पूजा बन्द ज़रूर करदी थी, किन्तु ईसाई धर्म मित्रपूजा के बहुत से अनुष्ठानों को, बहुत से तत्वों को अपनाकर परिपुष्ट हो उठा था। नहीं तो जन साधारण मित्र को छोड़ कर ईसा को ग्रहण न करते।

इस मित्र पूजा में ईसाइयों की Eucharistic अनुष्ठान की तरह एक अनुष्ठान था। प्राचीन पारसी धर्म में आत्विक लोग रोटी और सोमरस उत्सर्ग करते थे। मित्र पूजा की प्रतिपत्ति के समय सोमरस दुष्प्राप्य हो चला था, उसके बदले अंगूर का रस पानी में मिला कर दिया जाता था। यह द्राक्षारस ही मद्य हो जाता है। [illegible] a loaf and a cup of water over which the priest pronounced a consecrated formula. This oblation of bread and water, with which they mingled wine, is compared by the Christian apologists with the Christian communion."

मित्र पूजा में इस ईसाई अनुष्ठान को देख कर उस समय के ईसाई फ़ादर आग बबूला हो जाते थे। उन में से दो एक जनों की बातें सुनिए। जस्टिन मार्टर कहते हैं -

"The wicked devils have imitated the Christian institution in the mysteries of Mithras com-

manding the same thing to be done. For, bread and a cup of water are placed with certain incantations in the mystic rites of one who is being initiated' टार्टुलियन कहते है- The devil, by the mysteries of his idol, imitates even main parts of the divine mysteries. Mithra [illegible] celebrates the oblation of bread."

ईयूखीस्ट [illegible] में [illegible] मांस की खाद्य के साथ अन्न के साथ तुलना [illegible]। [illegible] अन्न अमृतस्वरूप है, यह भी घुमा कर कहते थे। [illegible] अन्न-जल की बात आप [illegible] in the [illegible] eateth my [illegible] in me [illegible] जो मेरा मांस खाता है और मेरा खून पीता है, वह मुझ में [illegible] और मैं उस में अवस्थित होता हूं— [illegible] Ex [illegible] Man and drink his [illegible] ye have no life in you— जिन्होंने इस मानव सन्तान का मांस नहीं खाया और रक्त नहीं पिया वह मृत है। ईसा ने उस जगह अपना परिचय मानवरूपी—जीवरूपी कह कर दिया है। फिर "Who so eateth my flesh and drinketh my blood, hath eternal life' जिस ने मेरा मांस खाया है और मेरा रक्त पिया है, उस ने अमरता पाई है।

इस बात को और बढ़ाना नहीं चाहते । ईसाई जिस रोटी और मद्य को उत्सर्ग करके खाते हैं, वह ईसा का मांस और रक्त है, उसे खाने से ईसा को ही खाया जाता है । ईसा उन के देवता हैं, जनकेश्वर में और तनेयश्वर में कुछ भेद नहीं है, दोनों ही की आत्मा एक है । कट्टर ईसाई समझते हैं कि यह हमारा अपना अनुष्ठान है, यदि और किसी समाज में ऐसा कोई अनुष्ठान है तो वह शैतान की करतूत—diabolical parody है ।

प्रश्न उठता है कि हमारे वेदपन्थी समाज में भी ऐसा अनुष्ठान था या नहीं ? आवेस्तापन्थी समाज में ज़रूर था, वेदपन्थी समाज में भी था या नहीं ?

इस की आलोचना करने से पहले हम आप को एक बात बता देना चाहते हैं । आप लोग यह न समझें कि ईसाई समाज के सदृश अनुष्ठान हमारे वेदपन्थी समाज में भी थे, इस बात को सिद्ध करके हम वैदिक धर्म का माहात्म्य बढ़ाना चाहते हैं, इस से हमारा भी गौरव बढ़ेगा । हमारा यह आशय हरगिज़ नहीं है । हम यहां तुलनात्मक आलोचना कर रहे हैं, वैदिक धर्म के साथ ईसाई धर्म की यदि कुछ सदृशता हो तो उसे स्पष्ट रूप से दिखाना हम अपना कर्तव्य समझते हैं । उसे न दिखाने पर वेदपन्थी समाज के यज्ञानुष्ठान का तात्पर्य पूरी तरह समझ में न आयगा । वह सादृश्य कहां से आया, कैसे हुआ इस का आप लोग विचार करें । हम इस सादृश्य के अनुसन्धान में प्रवृत्त होते हैं । वैदिक अनुष्ठान में पुरोडाश या रोटी दी जाती थी और सोमरस दिया जाता था । रोटी पशुमांस

के ही बदले में दी जाती थी, उस पशुमांस में कौन से देवता प्रतिष्ठित थे, अब यह देखना होगा। रक्त देना वेदपन्थियों में निषिद्ध है क्योंकि वेदपन्थियों के देवता रक्त न पीते थे रक्त राक्षसों को प्रिय होता है। ईसा का रक्त अमरत्व दे सकता है। किन्तु हमारा सोमरस रक्त नहीं है, बिल्कुल अमृत है उसे पीने से अमरत्व देवत्व मिलजाता है। कण्व के पुत्र प्रगाथ ऋषि कहते हैं—'अपाम सोमममृता अभूम' अगन्म ज्योतिर्विदाम देवान् हम सोमपान करके अमर होगये हैं हमने ज्योति प्राप्त की है और देवताओं को जान लिया है। यही पुरोडाश और सोमरस देवता को दिया जाता था और ऋत्विक् यजमान के साथ उसे खाते थे। सोमरस पीना तो अमृत पीना है। पुरोडाश खाने का क्या मतलब है, यह हमें अच्छी तरह समझना होगा। ईसाई अनुष्ठानों के तात्पर्य के साथ इस का कोई मेल है या नहीं, यह भी समझना होगा। इस से पहले ईसाई अनुष्ठानों का मतलब समझना आवश्यक है।

ईसा का जन्म हुए दोसौ तीन सौ वर्ष बीत गये हैं। सारे रोम साम्राज्य में ईसा की पूजा फैल गई है, किन्तु अभी तक मित्र पूजा को यह नहीं हटा सकी है। ईसाइयों ने सारे साम्राज्य को कई इलाकों में बांट डाला है, एक एक इलाका एक एक बिशप के अधीन है। रोम के सम्राट केसर कान्सटेन्टाइन इतने दिन से बीच में लटक रहे थे। तराज़ू के एक पलड़े में मित्र को, दूसरे पलड़े में ईसा को बिठा कर तुलना कर रहे थे। आखिरकार वह ईसा की तरफ झुक पड़े। ईसा की पूजा रोम साम्राज्य का राष्ट्रीय धर्म होगया। किन्तु इस बीच में तर्क

उठा कि यह ईसा कौन हैं ? ईश्वर के साथ इन का क्या सम्पर्क है ? दोनों का एक ही मूल्य है क्या ? पुत्र सोलह आना ईश्वर है या नहीं ? सोलह आने ईश्वर होने पर फिर एकेश्वर-वाद कहां रहा ? ईसाई समाज में इस बात पर दलबन्दी और खूना खूनी तक आरम्भ होगई । क़ैसर कान्सटेंटाइन ने नाइसिया शहर में ईसाई सङ्गीति को बुलाया—बहुत पहले अशोक ने जिस तरह बौद्ध सङ्गीति को बुलाया था उसी तरह-बहुत देशों के ईसाई याजक आये, कोई दो हज़ार याजक जमा हुए उन में तीन सौ से अधिक बिशप थे । राजमहल के बड़े हाल में वे लोग धीरे धीरे बैठे । हाल के बीच में ऊँचे आसनपर बाइबिल रक्खी गई । [illegible] Pope पहन कर स्वयं [illegible] सिंहासन पर बैठे और वह रोम के राष्ट्रीय पुरोहित ([illegible]) हैं । याजकों के वोट लेकर तय होगा ईसा का ईश्वरत्व मंजूर करेंगे । एक तरफ़ [illegible] का दल था । ये लोग ईसा को सोलहआने ईश्वर नहीं मानते थे । दूसरी तरफ़ [illegible] का दल था । इनके मत में ईसा सोलह आने ईश्वर हैं । अथानासियसों की जीत हुई । उपस्थित याजकों के कोलाहल में एरियसों के दल की धीमी आवाज़ दब गई । राष्ट्रीय पुरोहित ने राष्ट्र के कल्याण के लिए उस का अनुमोदन किया । ईसा का पूर्ण ईश्वरत्व प्रतिष्ठित हो गया । क़ैसर का आदेश रोम साम्राज्य में प्रचारित हुआ-रोम के क़ैसर ने मान लिया है कि ईसा परिपूर्ण ईश्वर है । जो रोमन इसे न मानेगा वह राष्ट्र का शत्रु समझा जायगा । पण्डितों की बनाई हुई पुस्तकें भंगियों से

फिकवा दी गई। उस दल के दो विशपों ने स्वीकृत पत्र पर दस्तख़त नहीं किये थे इसलिए वे दोनों निर्वासित कर दिये गये। तब से आज तक कुछ यूनिटेरियनों को छोड़कर सब ईसाई ईसा को परिपूर्ण ईश्वर मानते आ रहे हैं। जो इस में संशय करे वह ईसाई नहीं।

नाइसिया शहर में प्रचारित इस स्वीकारोक्ति का नाम Nicene Creed है, सारा ईसाई समाज इसको मानता है। आप लोग जानते ही हैं कि अँगरेज़ रोम के बिशप के इलाक़े से बाहर हैं ये लोग पोप की अधीनता की बेड़ी काट कर प्रोटेस्टेन्ट होगये हैं। रानी एलिज़ाबेथ के समय Church of England में इस धर्म सम्पर्क के विषय में मतामत हुआ था। वह ३९ धाराओं में विधिबद्ध है। यही अंगरेज़ों के चर्च के विख्यात Thirty nine Articles हैं। बिशपों ने इन धाराओं को बनाया था और रानी एलिज़ाबेथ ने पार्लामेंट से मन्ज़ूर होजाने पर उनका अनुमोदन किया था। याद रखिएगा कि अंगरेज़ों के राजा भी अंगरेज़ों के देश में राष्ट्रगोप पुरोहित हैं-Defender of the Faith. किन्तु अंगरेज़ों के राजा प्रजा के प्रतिनिधियों की राय के बिना कोई काम नहीं कर सकते। इसी लिए इन धाराओं को पार्लामेन्ट में मंज़ूरी की ज़रूरत पड़ी थी। पार्लामेन्ट में वोटों के द्वारा जनकेश्वर के साथ तनयेश्वर का सम्बन्ध निर्धारित होगया है, और आज तक वही सम्बन्ध बहाल है।

-Nicene Creed वाले मानते हैं-We believe in one God, the father almighty, maker of all things visible

and invisible, and in one Lord, Jesus Christ, the Word of God, God from God, Light from Light, Life from Life, true God from true God, the only begotten Son; begotten not made, of the same essence with the Father, the first born of every creature, begotten of God the Father before all ages, through whome also all things were made, who for our salvation took flesh and lived amongst men, and suffered, and rose again on the third day, and ascended into the Father, and will come again in glory.

Church of England वाले मानते हैं–There is but one living and true God, everlasting, without body parts or passions, of infinite power wisdom and goodness, the maker and preserver of all things both visible and invisible. And in unity of this Godhead there be three persons of one substance power and eternity, the Father the Son and the Holy Ghost. The Son, which is the Word of the father, begotten from everlasting of the Father, of one substance with the Father, took man's nature, so that two whole and perfect natures, that is to say, the Godhead and manhood, were joined together in one Person, never

to be divided, whereof one is Christ, very God and very man, who truly suffered, was crucified, dead, and buried, to reconcile his Father to us and to be a sacrifice, not only for original guilt, but also for all actual sins of men.

आप देखेंगे कि इंग्लिश चर्च ने बहुत से विशेषण स्पष्ट भाव से ऐसे दिये हैं जो Nicene creed में नहीं हैं या अस्पष्ट हैं।

Nicene Creed प्रचारित होने के बाद और भी पल्लवित होगई थी इसी तरह पल्लवित और एक Creed का नाम Athanasian Creed है। Church of England ने इस Creed को मान लिया है इसीलिए वह इतनी स्पष्ट होगई है।

ईसाई शास्त्रकारों की राय में प्रत्येक विशेषण का गूढ़ मतलब है। जो ईसाई नहीं हैं उन्हें इनका मतलब समझना मुश्किल है। हम यथाशक्ति उनका अनुवाद करने की कोशिश करेंगे। इंग्लिश चर्च वाले कहते हैं, There is but one God ईश्वर एक और अद्वितीय है। वह ही God the Father यो नःपिता जनिता-है। वह living God प्राणस्वरूप है, स उ प्राणस्य प्राणः। वह everlasting अज या जन्मरहित, नित्य, और शाश्वत है, without body मूर्त्तिरहित है,-without part कलाहीन या निष्कल है निरवयव और अखंड है, without passions शुद्ध शांत, निरवद्य और निरञ्जन है। इन सब विशेषणों को एकत्र करने से हमारी भाषा में बनता है—'निष्कलं निष्क्रियं, शांतं निरवद्यं निरञ्जनम्। दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।'-इन वाक्यों के

प्रायः सभी विशेषण ईसाइयों की भाषा में हैं। सिर्फ निष्क्रिय विशेषण नहीं है। ईसाइयों को इसमें आपत्ति होसकती है। दिव्य या ज्योतिर्मय विशेषण भी यहां नहीं है किंतु Nicene में है। बाह्याभ्यन्तरः या सर्वव्यापी-यह भी नहीं है। ईसाई इसमें आपत्ति करेंगे या नहीं, मालूम नहीं। इसके बाद वह कहते हैं "of infinite power" सर्वशक्तिमान् "of infinite wisdom" सर्वज्ञ—ये दोनों विशेषण हमारे शास्त्रों में जहां तहां आये हैं। उस के बाद विशेषण है of infinite goodness यहां goodness का मतलब है kindness—it denotes the Divine will realising itself in imparting happiness to creatures इस का दूसरा नाम Grace कृपा या करुणा है। अद्वयवादी अपने परब्रह्म में इस विशेषण के अपेक्षा होने से कुंठित होसकते हैं किंतु रामानुजस्वामी ने अपने परब्रह्म में, अपने वासुदेव में, अकुतोभय से इस विशेषण का आरोप किया है- 'समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ' "जगतामुपकाराय चेष्टा तस्याप्रमेयस्य" वे अपार कारुण्य सौशील्य-वात्सल्य-औदार्य महौषधि' हैं। इसके बाद कहा गया है वह maker and preserver of all things visible and invisible वह यावतीय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूतों के सृष्टिकर्त्ता और विधाता हैं, अर्थात् वह भूतयोनि हैं—यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।

जनकेश्वर के विशेषण तो आपने सुन लिए। ईश्वर के साथ ईसा का सम्बन्ध स्थिर करने में ईसाइयों में बहुत वाद-विवाद हुआ था। ईसा में पूर्ण ईश्वरत्व है, या अंशमात्र है—

झगड़ा इसी पर है। Nicene Creed ने जो सम्पर्क सदा के लिए स्थिर कर दिया है वह प्रसिद्ध Trinity या त्रिपुरुषतत्त्व है। प्रथम पुरुष जनकेश्वर, द्वितीय पुरुष तनयेश्वर, तृतीय पुरुष Holy Spirit. Trinity तत्त्व के मत में ईश्वर एक होकर भी तीन रूप में विद्यमान है। इस में से हर एक पूर्ण ईश्वर है। पर ईश्वर तीन नहीं, एक है "The three person are of the same essence, power and eternity." Each is God, in each dwells the whole fullness of the godhead. ये सब नित्य हैं सर्वशक्तिमान् हैं। यहाँ एक दलवाले कहते हैं-पुत्र पिता के समान है। दूसरे दलवाले कहते हैं पुत्र पिता के सदृश है। एक दलवालों के मत में सम्पर्क का नाम homoi ousia समात्मकता, दूसरे दलवालों के मत में उसका नाम homoi ousia सदृशात्मकता है। पिता और पुत्र दोनों एक essencie, Substance या एक ही वस्तु हैं। किन्तु दोनों में उपाधिगत भेद है। ईसा ईश्वरपुत्र है, ईश्वर से उत्पन्न हुआ, सब :से पहले उत्पन्न हुआ है, begotten of the father, first begetton of the father. पिता ईश्वर समस्त भूतों का सृष्टिकर्त्ता है—Maker of all things किंतु वह पुत्र का Maker नहीं है, सृष्टिकर्त्ता नहीं है वह सिर्फ begetter है। सिर्फ जन्मदाता है। इसका यह अर्थ हुआ कि और भूतों का तो वह सिर्फ निमित्तकारण है किन्तु पुत्रका वह निमित्त कारण भी है और उपादान भी। कुम्हार घड़े का निमित्तकारण है मिट्टी का घड़ा बना देता है किन्तु पिता पुत्र का निमित्तकारण और उपादान कारण भी है। वह अपने उपादान से ही पुत्र को उत्पन्न करता है।

पिता ने पुत्र को जन्म दिया है और सब से पहले जन्म दिया है। प्रश्न होसकता है किस समय जन्म दिया है? ईसाई उत्तर देते हैं before all ages अर्थात् जब कालतक न था, तो इस का मतलब हुआ पुत्र भी पिता की तरह अनादि और नित्य है। पिता ने जब जगत् बनाया तब की तारीख़ का पता ईसाई लोग रखते हैं किन्तु पुत्र की पैदायश की तारीख़ उन्हें मालूम नहीं। क्योंकि पुत्र कालातिग,कालातीत beyond time है, जब सत् भी न था असत् भी न था तब उसका जन्म हुआ था।

यहीं पर पिता पुत्र में कुछ भेद है। पिता अनादि और नित्य है, पुत्र भी अनादि और नित्य है। पुत्र पिता से उत्पन्न हुआ है। पिता की जितनी उपाधियां या विशेषण हैं, सब पुत्र में विद्यमान हैं इनके अलावा और एक विशेषण पुत्र में मौजूद है वह पिता से उत्पन्न हुआ है।

ईसा के इस विशेषण को देखकर आप को हिरण्यगर्भ की याद आई होगी। "हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।" हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ था, किन्तु हुआ वह सब से पहले था, वह अग्रजन्म ईश्वर था। जन्मते ही वह समस्तभूतों का पति हुआ था। भूतपति या प्रजापति का यदि एक अर्थ किया जाय तो वह भी पहले विद्यमान था, यह बात हमारे शास्त्रों में जहां तहां लिखा है। भूतपति यह प्रजापति ही सब भूतों के स्रष्टा हैं, उनकी कामना से भूतों की सृष्टि हुई थी। ईसा के सम्बन्ध में भी ईसाई कहते हैं कि पिता ईश्वर ने अपने अग्रजन्म पुत्र के द्वारा समस्त भूतोंकी सृष्टि की

Througq Him all things were made ईसा के जन्म से सृष्टि का आरम्भ होता है—His ever lasting birth is the first step towards creation, and the universe of things owes its origin to Him. हिरण्यगर्भ जिस तरह भूतोंका पति है, ईसाई भी ईसा को उसी तरह समस्त भूतोंका पति बतलाते है। ईसा का प्रसिद्ध विशेषण है Lord और एक विशपण है King, king of kings or Lord of Lords, far above all authority and power and every name which is named.

आपने देखा पिता और पुत्र सब तरह से परिपूर्ण ईश्वर हैं. फिर भी दोनों में उपाधिभेद है। दोनों अनादि और नित्य हैं। फिर भी पिता जन्म रहित या अज है, पुत्र पितासे उत्पन्न हुआ है और सब से पहले उत्पन्न हुआ है। इस भेद के होते हुए अभेद दिखाने के लिए और कुछ विशेषणों का प्रयोग होता है। पुत्र पिता से उत्पन्न हुआ है कौन किससे उत्पन्न हुआ है इसका उत्तर हैGod from God ईश्वर से ईश्वर उत्पन्न हुआ है,very God from very God पूर्ण ईश्वर से पूर्ण ईश्वर उत्पन्न हुआ है। फिर कहा गयाहै Light from Light पिता ज्योतिःस्वरूप है, पुत्र भी ज्योतिःस्वरूप है Life from Life पिता प्राणस्वरूप है,पुत्र भी प्राणस्वरूप है। ब्रह्मसूत्र के इन सूत्रों को ही सोचिए-'ज्योतिश्चरणाभिधानात्' "प्राणस्तथानुगमात्" "अतएव प्राणः।" छान्दोग्य और कौषीतकि उपनिषद् के वाक्य को अवलम्बन करके इन सूत्रोंकी रचना हुई है। छान्दोग्य कहता है- अथोयदतः परो दिवोज्योतिर्दीप्यते, विश्वतः

पृष्ठेषु, सर्वतः पृष्ठेषु अनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेषु यदिदं वाव तद् यदिदं अन्तः पुरुषे ज्योतिः—'जो ज्योति द्युलोक के ऊपर है, विश्व की पृष्ठ पर सब लोकों की पृष्ठ पर दीप्तिमान है, पुरुष के अन्तः शरीर में जो ज्योति दीप्त है वह पर ज्योति यही ज्योति है । ईश्वर को ज्योतिःस्वरूप कहा जाता है क्योंकि - तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासासर्वमिदं विभाति' उस की प्रभा से सब प्रभावाले हैं कौषीतकि कहती है-'प्राणोस्मि प्रज्ञात्मात मामायुरमृतं इत्युपास्व ।' मैं प्राणस्वरूप हूँ और प्रज्ञास्वरूप हूँ आयुस्वरूप हूं और अमृतस्वरूप हूँ - मेरी उपासना कर । छान्दोग्य प्रश्न करता है, कतमा सा देवता? फिर उत्तर देता है, प्राणइति होवाच वह प्राण है । इससे सीधी भाषा और क्या होसकती है ।

ईसा को जिस तरह Son of God कहा जाता है उसी तरह उस को Son of Man कहा जाता है । Nicene Creed, Son of man के सम्बन्ध में अति संक्षेप में कहता है who for our Salvation became flesh and lived among men and suffered, and rose again on the third day and ascended unto the father इस तरह संक्षेप में ईसा के मनुष्यजीवन की कहानी सुनाई गई है । उसने मनुष्यों की मुक्ति के लिए मानवस्वरूप में मनुष्यों में वास किया, मनुष्यों के लिए प्राण देकर तीसरे दिन वह समाधि से उठा और पिता के पास गया । इसी लिए उसे Saviour कहा जाता है । Saviour शब्द का अनुवाद आप सुनना चाहते हैं ? तारकसार उपनिषद् में आपको इसका अनुवाद मिलेगा ।

बहुत परिचित भाषा में वहां इसका अनुवाद हुआ है। Suviour अर्थात् तारकब्रह्म।

मानवरूप या जीवरूप में ईश्वर का अवतरण ईसाई धर्म की भित्ति है। जो ईश्वररूप में अमूर्त हैं, जीवरूप में उन्हीं ने मूर्त्ति ग्रहण की है। उनका ईश्वरत्व जिस तरह पूर्ण है, उनका जीवत्व भी उसी तरह परिपूर्ण है। जिस तरह वह ईश्वर के साथ एकात्मा हैं, जीव के साथ भी यह उसीतरह एकात्मा हैं। एक साथ ही वह पूर्ण ईश्वर और पूर्ण जीव हैं। यह .ख्याल न कीजिएगा कि मेरी के गर्भ में जन्म लेने से ही उन्हें जीवत्व मिला है, वह अनादि जीव हैं। मेरी के गर्भ में जन्म लेने का नाम Incarnation या मानव विग्रह धारण है। किन्तु वह उस से पहले ही से जीव हैं, क्योंकि 'He was in the flesh as before the Incarnation, in the bosom of the Father.' वह मनुष्यजन्म लेने से पहले ही जीव रूप में पिता के साथ संयुक्त थे। मर्त्यभूमि से तिरोहित हो जाने के बाद भी उन्हों ने जीवत्व नहीं छोड़ा। इस प्रकार पूर्ण ईश्वरत्व और पूर्ण जीवत्व उन में सदा से मिला हुआ है 'Two whole and perfect natures, the Godhood and the manhood, were joined together in one Person, never to be divided.' पूर्ण ईश्वर और पूर्ण जीवत्व का ईसा में सम्मिलन हुआ है। ईश्वरत्व और जीवत्व उन में मिल कर एक हो गया है। उस से न कभी विच्छेद हुआ और न कभी हो।

और जीवों के साथ इन ईसा का कैसा सम्पर्क है ? जीव

मात्र ही ईश्वर के पुत्रस्थानीय होने पर भी पुत्र के अधिकार से वञ्चित हैं । जीव के अपराध से दोनों के बीच में एक बड़ा व्यवधान पड़ गया है इस अपराध का ईसाई नाम sin पाप है । अध्यापक डेसन से दिखाया है कि ईसाई जहां पाप कहते हैं, वेदपन्थी वहां कहते हैं— अविद्या । ईसाई कहते हैं कि इस अपराध से जीव अपने अधिकार से च्युत हो गया था—यहां तक कि ईश्वर के साथ जीव का एक तरह शत्रुता का सम्पर्क enmity हो गया था । पिता करुणालय हैं । वह पुत्रों को अपनी गोद में खींचना चाहते हैं नहीं तो उन्हें चैन कहां ? जीव का पाप इतना भीषण है कि सिवा ईश्वर के उसे और कोई दूर नहीं कर सकता । वेदपन्थी कहते हैं 'त्वं हि नः पिता योऽस्माकं अविद्यायाः पारं तारयति । ' तुम्हीं हमारे पिता हो तुम्हीं हमें अविद्या के पार लगाते हो और कोई नहीं । ईसाई कहते हैं—

Man's sin was so great that God only could pay it: therefore one must pay it who is God. Hence the necessity of the Incarnation. The son of God died for man in his own nature and thus wrought out a perfect satisfaction for his sin. Being originally in the absolute form of God, He emptied Himself of the invisible splendours of the Deity and took upon Him the form of a *bondman* and appeared in the likeness of man जीव को तारने के लिए ईसा स्वयं जीव बने,

जितने धर्म थे उन्होंने सब ग्रहण किये। गर्भावास, जन्म, मृत्यु, दुःख दैन्य आदि सभी जीवधर्म उन्होंने ग्रहण किये। वह जानते थे कि वह स्वयं ईश्वर हैं, I and my Father are one मुझे पूर्ण ऐश्वर्य है। तथापि उन्हों ने समस्त ऐश्वर्य से अपने को रिक्त किया और वह क्षुद्र जीव बने। वह बड़े होते हुए भी छोटे बने मुक्त पुरुष होते हुए भी बद्ध जीव bondman बने। इस बद्ध जीव विशेषण को आप याद रखिए। क्षुद्र जीव बन कर वह दीन दरिद्रों में पैदा हुए। उन्हें रहने को घर न था, उन की उपजीविका न थी, उन के अपने आदमियों ने उन्हें छोड़ दिया था, वह राजद्वार में अभियुक्त हुए, राजपुरुषों ने उन के बेंत मारे, आदमियों ने उन पर थूका, उन के शिष्यों ने उन्हें पकड़वा दिया, दूसरे शिष्यों ने अन्तिम समय उन्हें छोड़ दिया—आखिर क्रूस पर चढ़ कर मरणयातना भोग करते करते उन्होंने प्राण छोड़ दिये।

साधारण मनुष्यों की तरह दारुण यातना और दारुणतर अपमान सह कर मरना ही, ईसा का आत्मदानरूप महायज्ञ हुआ। उन्होंने पूर्ण जीव धर्म को स्वीकार किया था। जातिधर्म का छोड़ कर वह सब मनुष्यों के प्रतिभू थे। इस कारण समस्त मानव जाति के निष्क्रयरूप में उन्होंने अपने आप को नरपशुरूप से इस पुरुषयज्ञ में आहुति दिया। इस यज्ञ में वेही पशु हैं। वह मेष की तरह यज्ञभूमि में बध के लिए गये थे उन्हों ने अपना परिचय Lame of God के रूप में—ईश्वर के लिए उद्दिष्ट मेष के रूप में दिया था। बहुत जगह उन की मेष के साथ तुलना की गई है। जेहोवा के उद्देश में मेष

दिया जाता था, उन्होंने उसी मेष पशु के रूप में आत्मोत्सर्ग किया था। इस लिए वह यज्ञीय पशु हैं। उन्होंने अपने को आप ही आहुति दिया था। किसी और याजक की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। इस लिए वह ऋत्विक् और पशु Priest and Victim दोनों थे। सब मनुष्य उन के यजमान हैं। वह सब मनुष्यों के ऋत्विक् बने और अपने आप को पशु में परिणत करके उन्होंने आत्माहुति दी। यह आत्माहुति उन्होंने किस के उद्देश में दी थी? अपने पिता के उद्देश में दी थी, जिस पिता (ईश्वर) के साथ वह भिन्न होकर भी अभिन्न थे। मृत्यु के बाद वह उठ खड़े हुए थे। मृत्यु उन को न जीत सकी, मृत्यु को हरा कर वह तीसरे दिन क़ब्र से उठ खड़े हुए थे। पिता ईश्वर के पास खड़े होकर मनुष्यों के वही पुरोहित मनुष्य यजमानों की तरफ़ से, वही आहुति पिता के निकट आज भी अर्पण करते हैं और बहुत दिन तक अर्पण करेंगे। इसी आहुति के द्वारा मनुष्यका पाप दूर हुआ-ईश्वर और जीव के बीच में जो व्यवधान था वह दूर हुआ जीव पिता के निकट फिर पुत्ररूप में गृहीत हुआ। दोनों में atonement हुआ। इस atone-ment का अर्थ है at-one-ment अर्थात् making at one एकात्मता। ईसाई कहेंगे कि यह reconciliation—जीव और ईश्वर का सन्धिस्थापन है। वेदपन्थी कहेंगे कि यह सिर्फ़ सन्धि-स्थापन ही नहीं, एकात्मता स्थापन है। इस से यजमान देवता हुआ और जीव शिव। यह याद रखिएगा कि इस यज्ञ के द्वारा ही जीव के साथ शिव का मिलन हुआ। इस यज्ञ के ऋत्विक् स्वयं ईश्वर हैं, आहुति के द्रव्य स्वयं ईश्वर हैं और

उद्दिष्ट देवता भी स्वयं ईश्वर हैं। वास्तव में यह—ब्रह्मार्पणं ब्रह्महवि र्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्—ब्रह्म ने स्वयं ब्रह्माग्नि में ब्रह्मरूप हवि को ब्रह्म के उद्देश में अर्पण किया।

बाइबिल के वर्णन के अनुसार मृत्यु के तीसरे दिन ईसा क़ब्र से उठ बैठे थे। लोगों ने देखा कि उनकी क़ब्र ख़ाली थी। किसी किसी भक्त को वह उस अवसर पर सशरीर भी दिखाई दिये थे इस के बाद वह तिरोहित होगये—स्वर्गारोहण करगये। इस घटना का नाम Re-urrection या पुनर्जन्मलाभ है। वैज्ञानिक युक्ति के सामने यह घटना नहीं टिकती। इस बात के पक्ष में जितने प्रमाण दिये गये हैं उन से कोई ऐतिहासिक संतुष्ट न होगा। किन्तु इस बात पर ईसाई-समाज बेतरह डटा हुआ है। इस घटना को बेजड़ कहने से ईसाई धर्म की जड़ ही उखड़ी जाती है। इस घटना से यह साबित होता है कि ईसा मृत्युञ्जय थे। मृत्यु जीव के पापों का अवश्यम्भावी फल है, उसी मृत्यु को उन्होंने जीत लिया था। जो अमर थे वह तो अमर ही रहे, मरणधर्मी जीव को भी उन्होंने अमरता प्रदान की। ईश्वर में जो अमरता स्वभाव से ही मौजूद है, दूसरे जीवों को भी उस में अधिकार मिला। यह अमरता की प्राप्ति ईसाइयों की salvation या मुक्ति है। इस के द्वारा जीव ईश्वर के समीपस्थ हुआ। हमारी भाषा में उसे सालोक्य या सामीप्य लाभ हुआ। ईश्वर के साथ सायुज्य लाभ या ईश्वरत्व लाभ शायद ईसाइयों को वाञ्छित नहीं-हमारे देश के भक्तिपथ के पथिक जिस तरह सायुज्य नहीं चाहते, कुछ कुछ उसी तरह। अमरता

चाहने वाले ईसाई स्वर्ग में या ईश्वर के पास जाना चाहते हैं-एक दम सशरीर स्वर्ग में जाना चाहते हैं। किसी प्रकार के सूक्ष्म शरीर को अवलम्बन करके स्वर्ग में जाने से उन की तृप्ति नहीं होती। मर्त्यभूमि के जीर्ण वास को छोड़ कर विदेह मुक्ति उन्हें नहीं भाती वह एक दम कालर नेकटाई समेत सशरीर ईश्वर के सालोक्य या सामीप्य की प्रार्थना करते हैं। सशरीर स्वर्ग में जाने की बात हमारी पौराणिक कथाओं में भी है। ययाति, त्रिशङ्कु, हरिश्चन्द्र आदि की सशरीर स्वर्ग में जाने की कथा आपने सुनी होगी। युधिष्ठिर क़रीब क़रीब निर्विघ्नही स्वर्ग में सशरीर चलेगये थे।किन्तु वेदपंथियोंका यह स्वर्ग लोक निकृष्ट लोक है; ब्रह्मलोक नहीं। वेद की भाषा में यह देवताओं का प्रिय धाम है। जो मोक्ष चाहते हैं वह इसके लिए प्रार्थना नहीं करते। युधिष्ठिर सशरीर इस स्वर्ग में गये ज़रूर थे किन्तु उन्हें भी एक बार नरक देखना पड़ा था। जीव के लिए जीव धर्म का बिलकुल छोड़ना सम्भव नहीं। ईसा मसीह भी क्रूसपर मरने के बाद और क़ब्र से उठने के पहले एक बार अधोभुवन या नरक में गये थे Athanasian Creed ने यह बात साफ़ तौर पर मानली है। सचमुच वह नरक में गये थे, नहीं तो उनका जीवत्व पूरा नहीं होता। क्षुद्र जीवको जो कुछ सहना पड़ता है ईश्वर ने भी जीव बन कर वह सब सहा था।

ईसा कौन देवता थे; क्या अब भी यह समझना बाक़ी है? ईसाई शास्त्रों में ईसा पर जो विशेषण आरोप किये गये हैं हम ने यथाशक्ति उन सबका अनुवाद कर दिया। संभव है आप

अनुवाद को देख कर चौंके भी हों। अधिकांश जगह आप ने ईसाइयों और वेदपंथियों की भाषा में अक्षर अक्षर का मिलान देखा। अब हम आप लोगों से साफ़ साफ़ कहना चाहते हैं कि हमारे शास्त्र में जिसे जीव कहते हैं ईसाई शास्त्र में वही ईसा है। ईसाके साथ ईश्वर का सम्पर्क है जीव के साथ ईश्वर का सम्पर्क है। हमारे देश में इसी सम्पर्क को समझाने में जिस तरह अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि अनेक मत पैदा हो गये थे, ईसाई समाज में भी उसी सम्पर्क को समझाने में इसी तरह बहुत से वाद प्रतिवाद पैदा होगये हैं।

कई वर्ष तक सारा ईसाईसमाज इसी वाद प्रतिवाद के आलोडन से काम्पित होगया था। आप ने देखा कि ईसाई समाज ने आख़िर तक जो सम्बन्ध स्वीकार किया है, वह बिलकुल विशुद्ध अद्वयवाद न होने पर भी अद्वयवाद को पकड़ कर ज़रूर चला है। ईसाइयों ने मान लिया है कि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता हैं उन्होंने संल्पकमात्र से ही सारी सृष्टि की है God said Let there be light and there was light इत्यादि वेदांत में भी 'स ऐक्षत' 'सोऽकामयत' आदि वाक्य सृष्टि के प्रसंग में कहे गये हैं। पंचदशी इन सब की आलोचना करके कहती है। "संकल्पेनासृजत् लोकान्" संकल्प से ही उन्होंने सब लोकों की सृष्टि की थी। बाइबिल कहती है He made man after his own image हम भी कहते हैं कि ईश्वर जीव हुए हैं। दोनोंका सम्पर्क बिम्ब प्रतिबिम्ब के सम्पर्क की तरह है Image शब्द का अनुवाद प्रतिबिम्ब है, ईसा एक तरफ son of God होकर भी स्वयं true God, very God, perfect God महे-

ईश्वर या परमेश्वर हैं, दूसरी तरफ उसी तरह वह son of man होकर भी perfect Man, sinless Man या पुरुषोत्तम हैं। दोनों ही अनादि नित्य है, दोनों ही सर्वेश्वर हैं, दोनों का ही ईश्वरत्व पूर्ण है। ईसा और ईश्वर दोनों भिन्न पुरुष होते हुए भी और दोनों समान भाव से ईश्वर होते हुए भी एक ही हैं, दो नहीं। There is but one God, but not two Gods. ईसा में ईश्वरत्व और जीवत्व एक साथ मिला हुआ है, ईसा एकाकी पूर्ण ईश्वर और पूर्ण जीव हैं। अद्वयवाद और किसे कहते हैं? ईसाई समाज में हम ने बहुत से वाद प्रतिवादों का उल्लेख किया है Arius ने कहा कि ईसा जब पुत्र हैं तो वह पिता के बाद जनमे हैं, वह अनादि नित्य नहीं हो सकते। Apollonarius ने कहा कि ईसा एकाकी एक पुरुष हैं। या तो वह पूरे ईश्वर हैं या पूरे जीव। अकेले वह दोनों कैसे हो सकते हैं। बृहदारण्यक में वह इसका उत्तर पा सकते थे—"पूर्णमदः पूर्णमिदम" वह भी पूर्ण है यह भी पूर्ण है। "पूर्णात् पूर्णमुदच्यते" पूर्ण से ही पूर्ण निकलता है। "पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते" पूर्ण से पूर्ण निकल जाने पर जो बाक़ी रह जाता है वह भी पूर्ण है। Nestorius ने कहा कि ईसा जब ईश्वर हैं और जीव भी हैं तो वह एक पुरुष नहीं हैं एक ईसा के अंदर दो पुरुष विद्यमान हैं। Eutychius ने कहा कि ईसा एक पुरुष हैं या तो वह ईश्वर हैं या जीव वह अकेले दोनों नहीं हो सकते। आखिर में ईसाइयों ने इनमें से एक भी मत न माना। उन्होंने कहा, नहीं ईसा एक ही पुरुष हैं वह एक साथ ईश्वर और जीव हैं। जो ईश्वर है वही जीव है। जीव

और ईश्वर में कुछ भेद नहीं, अद्वयवाद और किसे कहेंगे? इस के बाद जब ईसा ने अपने मुख से कहा कि मैं और पिता एक हूँ तब 'अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्य की प्रतिध्वनि उनके मुख से सुनी गई, इसे हम कैसे अस्वीकार करेंगे।

यह ईश्वर जो अनादि है, नित्य है, कालातीत है, वह चिरमुक्त होकर बद्ध बना है, वह महत् होकर क्षुद्र बना है, अपने को देशकाल से ढक कर वह जन्म मृत्यु के अधीन हुआ है, नर देहको आरम्भ करके वह दुःख और तापों में फंसा है। किन्तु यह सब होने पर भी-नरदेह धारण करने पर भी उस के ईश्वरत्व में कुछ भी अंतर नहीं आया। ईसाई कहते हैं Though he humbled himself, he never for one moment ceased to be God हम भी कहते हैं, जीव चिरमुक्त है उसका बन्धन तो एक खेल है।

आप भागवत और वैष्णवों के चतुर्व्यूहवाद को जानते होंगे। भागवत मत ईसा के जन्म से बहुत पहले प्रतिष्ठित हो चुका था इसका ऐतिहासिक प्रमाण मिल गया है। महाभारत में इस मत का पूरा पूरा उल्लेख है। ईसाके जन्म के बाद महाभारत में किसी ने इतना अंश मिला दिया है किसी तरह यह बात नहीं कही जा सकती। भागवत के इस मतका नाम चतुर्व्यूहवाद है, रामानुज स्वामी इसे चातुरात्म्य उपासना कहते हैं। यह ईसाइयों की Trinity या त्रिव्यूहवाद के समान है। दोनों में इतना सादृश्य है कि किसने किस से यह बात ली यह बात आपही आप उठती है। ईसाई कहते हैं एक ईश्वर त्रिधा अवस्थित है, तीन रूपों में अवस्थित है, Father

son and holy ghost और ये तीनों समान भावसे ईश्वर हैं। तीनों समान भाव से नित्य और शाश्वत Co-eternal हैं पिता ने पुत्र को जन्म दिया है, beget किया है, और Holy Ghost पिता पुत्र दोनों से उत्पन्न हुआ है Proceed हुआ है। तर्क हो सकती है जब पिता से पुत्र उत्पन्न हुआ है तब दोनों नित्य Co-eternal किस प्रकार हुए? दोनों समान और पूर्ण ईश्वर किस तरह हुए? Arius और उसके अनुयायी इसी तर्क से पुत्र को पिता से अलग करने की चेष्टा करते थे और इस तरह का विवाद चलाते थे। अंत में तीन पुरुषों की एकात्मता और पूर्णता मानी गई। पाञ्चरात्रमत में एक वासुदेव नामक पर ब्रह्म ही चतुर्धा अवस्थित हैं-वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। मानो ये चार व्यूह हैं। ये सभी पूर्ण ईश्वर हैं, परब्रह्म स्वरूप हैं और एक दूसरे से उत्पन्न हैं। कौन कहां से उत्पन्न हुआ इस सम्बन्ध में कहा गया है-"परमकारणात् परब्रह्मभूता द्वासुदेवात् संकर्षणो नाम जीवो जायते, संकर्षणात् प्रद्युम्नसंज्ञं मनो जायते तस्मादनिरुद्धसंज्ञोहंकारो जायते।" परब्रह्म स्वरूप वासुदेव से संकर्षण उत्पन्न हुआ, यह संकर्षण ही जीव है। संकर्षण से प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ, यह प्रद्युम्न मन है। प्रद्युम्न से अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ, यह अनिरुद्ध अहंकार है। प्रद्युम्न और अनिरुद्ध से इस समय हमारा कुछ प्रयोजन नहीं है। वासुदेव और संकर्षण का सम्पर्क देखिए। वासुदेव परब्रह्म है किन्तु संकर्षण जीव है। परब्रह्म से जीव उत्पन्न हुआ है पर वह जीव भी परब्रह्म है। रामानुज साफ साफ कहते हैं-'संकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानामपि परब्रह्मभावे सति

एक जीव है, एक ईश्वर हैं, ईश्वर से जीव जन्मा है किंतु हैं दोनों ब्रह्म-यह एक बड़ी पहेली हैं। ईसाइयों में जो पहेली उठी ठीक वैसी ही यह पहेली है। वेदवाक्यों ने इस पहेली को और मुश्किल बना दिया है। वेद शास्त्रों में जीव को सब जगह नित्य और जन्मरहित बताया है। जीव के सम्बन्ध में कहा गया है-'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' 'अजो नित्यः शाश्वतोयंपुराणः' 'स वा एष महानज आत्मा अज अजरोमृतोमयः ब्रह्म" इत्यादि। वेदपंथी रामानुज इन सब वाक्यों की अवज्ञा न कर सके, वह कहते हैं-जीवरूपी संकर्षण नित्य है, इसमें संदेह नहीं, वासुदेव से उत्पन्न होने पर भी वह नित्य है फिर पाञ्चरात्रशास्त्र में संकर्षण की जो उत्पत्ति बताई है वह अचेतन भूतोत्पत्ति की तरह उत्पत्ति नहीं है। "वासुदेवाख्यं परं ब्रह्मैव आश्रितवत्सलं स्वाश्रितसमाश्रयणीयत्वाय स्वेच्छया चतुर्द्धा अवतिष्ठते" परब्रह्म वासुदेव आश्रितवत्सल हैं, आश्रितों के आश्रय के लिए अपनी इच्छा से उन्होंने अपने को चार भागों में बाँट दिया है। रामानुज परम वैष्णव हैं, पाञ्चरात्रमत की रक्षा करनेके लिए वह बाध्य थे। शंकराचार्य्य को भागवत मत में अनुराग न था। उन्होंने एक फूंक में भागवत मत को उड़ा दिया। कहते हैं वेदके मतमें जीव नित्य है पांचरात्र मत में जीव वासुदेव से उत्पन्न हुआ है, जिसकी उत्पत्ति है वह नित्य नहीं हो सकता। इस लिए पांचरात्रमत वेदविरुद्ध और अग्राह्य है, ईसाका शंकराचार्य्य परायस था।

आपने देखा कि ईसाइयों के जनकश्वेर की जगह वासुदेव को और तनयेश्वर की जगह सङ्कर्षण को बिठाने से पाञ्चरात्र

और ईसाई मतमें कोई भेद नहीं रहता। जनकेश्वर स्वयं वासुदेव हैं वह आश्रितवत्सल हैं. आश्रितों के उद्धार के लिए ही उन्होंने पुत्र ईसाको जन्म दिया है। तनयेश्वर स्वयं संकर्षण हैं वह वासुदेव से ही पैदा हुए हैं और वासुदेव से अभिन्न हैं वह son of man, perfect man हैं इस लिए वे ही जीव हैं। जीव ईश्वर से उत्पन्न है और ईश्वर ही की तरह नित्य है।

हम ने ईसाके स्वरूप को समझाने की कोशिश की। ईसाइयों की भाषा बताई और उसका वेदपंथी भाषा में अनुवाद भी किया। किंतु ईसाके एक बड़े विशेषण के बारे में हमने अभी कुछ नहीं कहा। सब ईसाई एक स्वर से ईसाके सम्बन्ध में कहते हैं कि वह word of God है। Churh of England ने इस बात को मान लिया है-The son which is the word of the Father इस विशेषण का मूल जोहन द्वारा प्रचारित सुसमाचार में पाया जाता है-यह आप जानते ही हैं, फिर भी हम आपको सुनाना चाहते हैं—"In the beginning was the word, and the word was with God and the word was God All things were made by him; and without him was not anything made that was made." फिर कहा जाता है—"And the word was made flesh and dwelt among us, and we behold his glory, the glory as of the only begotten of the Father, full of grace and truth."

मिशनरियों के अनुवाद "आदि में वाक्य था।" को लेकर आपने दिल्लगी उड़ाई है। हम word को वाक्य नहीं कहेंगे-

हम कहेंगे वाक या शब्द। तभी आप स्तब्ध हो जायँगे। जोहन के अनुवाद में यदि हम कहें कि "पहले वाक् था अथवा शब्द था।" वैसे तो आप चौंक उठेंगे और कहेंगे कि तो ईसा और कुछ नहीं है, वह हमारा चिरपरिचित वही शब्दब्रह्म या वाग्देवता है। वेदपन्थियों का साहित्य शब्द-ब्रह्म के माहात्म्य से भरा पड़ा है, जोहन के वाक्य से आपको कुछ सन्देह न रहेगा। शब्द ही ब्रह्म है शब्द ही से सब लोक बने हैं, शब्द ही मूर्त्ति ग्रहण करके जीवरूप में उत्पन्न हुआ है—यह सब बात हमारी खूब जानी हुई है। जोहन का सुसमाचार ग्रीक भाषा में लिखा गया था। अंगरेजी [illegible] शब्द का लेटिन अनुवाद [illegible] है, ग्रीक अनुवाद है Logos। स्वर्ग में वह अमूर्त Logos है मर्त्यभूमि में वह [illegible] Logos [illegible] made flesh है, शब्दब्रह्म स्थूल देह से अवतीर्ण [illegible] है। इस Logos नाम के पीछे [illegible] वर्ष का इतिहास छिपा पड़ा है। ईसा से पांचसौ वर्ष पहले ग्रीक पण्डित हीराक्लिटस के ग्रन्थों में यह Logos शब्द मिलता है। वेद में जिसे ऋत कहते हैं, यह पण्डित Logos शब्द से वही समझते थे। इस ऋत के द्वारा जगत् [illegible] है, [illegible] है। यही वह Cosmic Row है जिसके द्वारा नक्षत्र अपने स्थान में डटे हुए हैं, ग्रह अपने रास्ते पर चल रहे हैं। वेदपन्थियों की भाषा में यह धर्म से अभिन्न है। बौद्धों ने भी इसे धर्म नाम देकर क्रियत्व के अन्तर्गत कर दिया है। इसका दूसरा नाम psyche या Principle of the life (जीवन सिद्धान्त) है। स्टोयिकों के हाथों में यह Reason या प्रज्ञा में परिणत होगया।

है, जिन प्रज्ञा से जगत् उत्पन्न हुआ है। बौद्धों ने भी मोक्ष पर धर्म को प्रज्ञा या प्रज्ञापारमिता में परिणत कर लिया है। अलेकज़ेन्ड्रिया शहर में यहूदियों का बड़ा पुराना अड्डा था। वहां के यहूदी ग्रीक भावापन्न हो चले थे। यहूदियों का एक पुराना सृष्टितत्त्व था—ईश्वर ने कहा जगत् हो और जगत् हो गया। [illegible] ईश्वर के वाक्य या शब्द से जगत् की उत्पत्ति है। इस शब्द [illegible] Memra कहते थे। अलेकज़ेन्ड्रिया शहर में यहूदियों [illegible] Memra ग्रीकों के Logos के साथ मिल गया। [illegible] की परिणति हुई एक Philo नामक ग्रीक भावापन्न यहूदी के हाथ से। शब्द के साथ धर्म और प्रज्ञा दोनों मिल गये और जगत् का कर्तृत्व और विधातृत्व इसी प्रज्ञात्मा शब्द ब्रह्म में आरोपित हुआ। Philo की भाषा में यह शब्द ईश्वर से उत्पन्न हुआ है, सब से पहले उत्पन्न हुआ है, यह आदि जीव है और जीव उसके छायारूप हैं। वह ईश्वर के साथ रहकर जगत् का प्रबन्ध करता है। प्रज्ञा उसकी जननी है, कहीं वह स्वयं प्रज्ञात्मा है। सुसमाचार प्रचारक जोहन ने अलेकज़ेन्ड्रिया से अपने शब्द ब्रह्म को पाया था इस में कोई संशय नहीं करता। Philo ईसाई न थे। जोहन ईसा का सुसमाचार प्रचार करने बैठे थे उन्होंने ईसा का ही शब्दब्रह्म-रूप में प्रचार किया और शब्दब्रह्म के सारे विशेषण ईसा ही पर लगा दिये ईश्वर नरदेह धारण कर सकता है, कोई जीव ईश्वर हो सकता है यहूदियों की तो यह कल्पना से भी परे है। किन्तु जोहन ने ईसा में ये सब बातें घटा दीं। वह पहले शब्द-रूप में विद्यमान थे, उन्होंने नरदेह धारण करके अपने को

क्षुद्र बनाया, जीव के मंगल के लिए ही उन्होंने जीवलीला का अभिनय किया। ईसा का क्रूस पर चढ़ना ही यज्ञ या आत्मोत्सर्ग है इस में किसी को सन्देह नहीं। ईसा का सारा जीवन ही यज्ञ है, क्योंकि ईश्वर का जीव बनना ही आत्मोत्सर्ग है। जो बड़ा है, उस का छोटा होना ही आत्मोत्सर्ग है। ईसा का सारा जीवन ही यज्ञ है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है। सृष्टि के आदि से ही इस की व्यवस्था होगई है। ईसाइयों की भाषा में–The Incarnation and the Passion, as the Sacrament of the divine Self sacrifice, were parts of the counsels of God from all eternity The Logos before Incarnation was man. ईश्वर जीव होगा, जो नित्यमुक्त है वह बंधेगा, यह जगत् की सृष्टि का निगूढ़ तात्पर्य है यही उस का जगत् में आत्मप्रकाश का निगूढ़ रहस्य है।

हम ने तुलनामूलक आलोचना की है। पोथियों का छान बीन कर ईसाई तत्व का जो तात्पर्य हमने समझा है, वही आप के सामने रख दिया है। ईसाइयों के मन में ईसा शब्द-स्वरूप, वाक्यस्वरूप है–वेदपन्थियों की भाषा में वह शब्दब्रह्म और वागात्मा है वह ईश्वर भी हैं और जीव भी। वह एक साथ जीव और ईश्वर हैं। मुक्तजीव और ईश्वर में कोई भेद नहीं है। वह चिरमुक्त होते हुए भी बद्ध हुए थे। उन्होंने अपने ही सृष्ट जगत् में आत्मप्रकाश करने के लिए बद्ध जीव के रूप में आने को ग्रहण किया था। इस से उन्हें छोटा होना पड़ा था जो महत् है, ... यनना पड़ा था। जगत् के सामने

अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिए ही उन्होंने यह क्षुद्रता स्वीकार की थी। हमारी भाषा में यह लीलाकैवल्य है। यह जागतिक विधान है जगत् की सृष्टि ही एक प्रकार आत्मविसर्जन है। और जितने क्षुद्र जीव हैं,-ईश्वर का प्रतिविम्ब रूप धरे हुए जितने क्षुद्र जीव हैं—जो स्वकृत पापों के भार से ईश्वर से विच्छिन्न होकर दूर रह गये हैं, जो उसी पाप के भय से मृत्यु के वश हो गये हैं अमरता से वञ्चित हो गये हैं किन्तु उस अग्रजन्मा आदिजीव ने आत्मविसर्जन कर के उन के पापों का नाश कर दिया। उन लोगों को दिखा दिया कि पाप चिर-स्थायी नहीं है। ईसा को, ईसा के स्वरूप को और जीवेश्वर के प्रकृत सम्बन्ध को जान लेने से ही, यह पाप न रहेगा। तब वह अमरता का अधिकार पायगा—उस का स्वेच्छाकृत बन्धन खुल जायगा। जो नित्यमुक्त होकर भी अपने को बद्ध समझता है, बद्ध की तरह आचरण करता है वह मुक्त होगा। ईश्वर और जीव के बीच में जो बड़ा अन्तर है, वह अपनी इच्छा से कल्पना किया गया है, वह व्यवधान लुप्त होजा-यगा। इस के लिए ईसा के साथ उनकी एकात्मता होनी आवश्यक है। ईसा ने मानवलीला के क्रम पर मरणाभिनय करके यज्ञ सम्पादन किया है, उन्हों ने मरणाभिनय के द्वारा मृत्यु को जीतने का नाटक दिखाया है, मृत्यु के द्वारा मृत्यु को जीता है। उसी यज्ञका अङ्गीकार करके उसी यज्ञ का हविःशेष उन्हें भक्षण करना होगा। यह यज्ञ, यह मृत्यु का स्वीकार करना एक अभिनय है, मिथ्याज्ञान से उत्पन्न हुआ। अभि-नय है यह अविद्या है विद्या या सत्य ज्ञान के मिल जाने

पर मृत्यु नहीं रहती । 'अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते''-अविद्या के द्वारा मृत्यु के पार जाकर विद्या के द्वारा अमरता मिलती है । ईसा यज्ञीय पशु बने थे इसलिए उनका रक्त मांस खाकर उन के साथ एकात्मता Communion—करनी होगी । इसी लिए हरेक ईसाई ईसा का रक्त मांस खाता है-Eucharist खाता है, ईसा के अंतिम आदेश के अनुसार उत्सृष्ट रोटी और मद से ईसा द्वारा सम्पादित यज्ञ का पुनरभिनय करता है—यज्ञ का हविःशेष भक्षण करके ईसा को आत्मसात् करता है, आत्मस्थ करता है, ईसा के साथ एकात्मता प्राप्त करता है । बद्ध जीव इस रूप में मुक्ति के पथ में आगे बढ़ता है ।

ईसाई अपने देवता को खाते हैं, इसी बात से हम ने यह प्रसंग आरम्भ किया है । क्रूस पर आरोहण की पहली रात्रि में वह अपने शिष्यों के साथ भोजन करने बैठे थे । खाने की मेज़ पर रोटी और मद्य दोनों थे । ईसा ने कहा—यह रोटी मेरा मांस है और मद्य मेरा रक्त है, इन्हें तुम लोग खाओ यह कह कर उन्होंने रोटी और मद्य शिष्यों को बांट दिये दूसरे दिन उन्हों ने पशुरूप में ईश्वर के निकट अपनी आहुति दी । पहले दिन का यह अनुष्ठान दूसरे दिन के यज्ञाभिनय का (rehearsal) स्वरूप हुआ। ईसाई लोग तभी से यह रोटी और मद खाते आ रहे हैं, इस से उसी यज्ञीय पशु का रक्त मांस खाया जाता है - यह यज्ञ का हविःशेष भक्षण ही है । इस भक्ष्य द्रव्य का नाम eucharist है eucharist का खाना ईसा के साथ एकात्मता प्राप्त करना है । यह बात न भूलिएगा कि ईसा यज्ञ में पशु बने थे,

क्रूस ही उस यज्ञ का यूप था। जो स्वयं पशुपति हैं, वह पशु बन कर यूप से बँधे थे, पशुरूप में मृत्यु स्वीकार करके उन्होंने मृत्यु को जीता था। दूसरे पशु उसी पशु का मांस खा कर पशुपति के साथ एकात्मता प्राप्त करेंगे। और इस रूप में उन्हें पशुजन्म से निष्कृति मिलेगी। आश्चर्य की बात है कि हमारे यहां भी पाशुपत दर्शन की भाषा में, शैव और शाक्त सम्प्रदायों की भाषा में पशु शब्द का अर्थ बद्धजीव है, पशुपति का अर्थ है ईश्वर और पशुजन्म से अव्याहृति का नाम है मुक्ति। ईसाइयों के eucharist सम्बन्ध में जो सिद्धान्त हैं उन्हें आप ईसाइयों की बातें बिना सुने शायद न मानेंगे। इसी लिए फिर हम एक ईसाई शास्त्रज्ञ की बात सुनाते हैं—"The sacrifice of Christ was once offered on the cross"—क्रूस पर आत्मदान करके ही ईसा ने यज्ञानुष्ठान किया था—इतिहास में यही एकमात्र यज्ञानुष्ठान है। "It is offered, to the Father, and to the Son, and in it our Lord offers and is offered and receives the sacrifice" इस यज्ञ के देवता जनकेश्वर हैं, इस यज्ञ के देवता तनयेश्वर हैं, और यह ईसा स्वयं ऋत्विक्, पशु और देवता हैं। उन्हों ने अपने ही उद्देश में अपने को आहुति दिया है। हम भी तो कहते हैं, ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्, "On the Cross and in the Eucharist there is one Sacrifice"—क्रूस के ऊपर जो यज्ञ हुआ था eucharist खाने के समय भी उसी यज्ञ का पुनरभिनय होता है। दोनों एक ही यज्ञ हैं। "He unites man with Himself and this m-

ans of reconciliation is in the Eucharist" इस हविः शेष को खाने से ही मनुष्य ईसाके साथ मिलता है-जीवेश्वर की एकता सम्पादित होती है। "It is not a symbol of a sacrifice, but really a sacrifice, in which that which is offered in sacrifice is the body of Christ, and in which the moment of sacrifice is when the bread and wine are changed into His body and blood" मन्त्रोच्चारण के बाद जब रोटी और मद्य ईसा के रक्त मांस में परिणत हो जाते हैं, ठीक उसी समय यह यज्ञ अनुष्ठित होता है " He has not ceased from His priestly office and exercises an abiding ministry in our behalf as a priest for ever." क्रूस के ऊपर होने वाले महायज्ञ में वह आप ही ऋत्विक् थे--किन्तु उस ऋत्विक् के काम से वह अभी तक निवृत्त नहीं हुए हैं, उन के पिता के निकट वही यज्ञ आज भी अर्पित होता है और बहुत दिनों तक होता रहेगा।

आज तो बस हम यहीं छुट्टी लेना चाहते हैं कहना चाहिए वैदिक यज्ञकी बात तो आज हमने उठाई ही नहीं। आजतो हमने सिर्फ़ ईसाई-यज्ञ की ही बातें कहीं। हम सिर्फ एक बार और आपके सम्मुख उपस्थित होंगे। वेदपन्थी समाज में वैदिक यज्ञ का तात्पर्य क्या है, यह हम आपको दिखाना चाहते हैं। हम दिखाना चाहते हैं कि इस यज्ञानुष्ठान से ही वेदपन्थी समाज धृत था। धृत था क्या, अब भी धृत है। अब हम श्रौत यज्ञोंके नाम

तक भूल गये हैं। यज्ञके देवताओं के नाम तक भूल गये हैं। किन्तु फिर भी बिना जाने हम यज्ञको पकड़े हुए हैं। यज्ञ के तात्पर्य को ठीक रख कर अत्यंत व्यापक अर्थ में हम यज्ञ को पकड़े हुए हैं। हमारा सामाजिक जीवन, गार्हस्थ जीवन, हमारी लोकस्थिति और लोकयात्रा आज तक यज्ञ के ऊपर प्रतिष्ठित है। इस तात्पर्य को बिना समझे वेदपन्थी समाज में लोकस्थिति का यह गूढ़ रहस्य समझ में न आयेगा। भारत-वर्ष में वेदपंथी समाज का अग्रभाग जिस एक अविच्छेद्यहीन सूत्र से मज़बूत बँधा हुआ है, उसे आप न पा सकेंगे। यज्ञ के हविःशेष भक्षण का व्यापार एक Symbol है, समाज में हमें किस राह पर चलना होगा किस उद्देश्य से चलना होगा, इसी का यह Symbol है। इस हविःशेष भक्षण के अनुष्ठान का गूढ़ तात्पर्य समझना होगा। पहले कई बार इनमें बहुत से यज्ञों का संक्षिप्त वर्णन आपको सुनाया है-अग्निहोत्र,दर्शयाग, पशुयाग, सोमयाग आदि यज्ञों का विवरण दिया था। अग्नि-होत्र यज्ञ में दूधकी आहुति देकर वही दूध थोड़ा सा पीना पड़ता है, पूर्णमासादि इष्टियाग में पुरोडाश की आहुति देकर उसका बचा हुआ अंश खाना पड़ता है सोमयज्ञ में देवताको सोमरस देकर उसका बचा हुआ अंश पीना पड़ता है। यही हविःशेष भक्षण है। अकेले यजमान के खाने से काम नहीं चलता, ऋत्विक् और यजमान दोनो एक साथ खाते हैं। इस एक साथ खाने का नाम ही communion है। यह एक सामा-जिक अनुष्ठान है। एक ओर गृहस्थ के साथ दूसरी ओर समाज के साथ देवता का मिलनसाधन ही communion है।

इस अनुष्ठान के बिना यज्ञ संपूर्ण नहीं होता-कहा जाय तो इस अनुष्ठान से ही यज्ञकी समाप्ति है। इस सङ्कीर्ण अनुष्ठान का एक व्यापक तात्पर्य है। सामाजिक जीवन में उसी तात्पर्य का प्रयोग करना होगा। उसी तात्पर्य के अनुसार समाज में जीवनयात्रा चलानी होगी। हमने दिखाया कि यह अनुष्ठान एक हिसाब से मानव--साधारण अनुष्ठान है। अनेक जातियों में इसी तरह का अनुष्ठान है। ईसाई समाज में यह हविःशेष भक्षण अनुष्ठान eucharist भक्षण है। ईसाइयों के मत के अनुसार इस भक्षण का तात्पर्य हमने आज यथाशक्ति समझाया है। वेदपन्थी समाज में इस अनुष्ठान का तात्पर्य क्या है, यह फिर समझाने की चेष्टा करेंगे।

ईसाई समाजने जो तात्पर्य दिया है, और उससे बहुत पुराने वेदपन्थी समाज ने जो तात्पर्य दिया है, उन की तुलना करने पर आप विस्मित होंगे। एक पक्ष ने दूसरे पक्ष से क़र्ज़ लिया है या नहीं, यह प्रसंग हम आरम्भ में नहीं छेड़ेंगे। हम सादृश्य दिखायेंगे। इसके बाद हम यह दिखाना चाहते हैं कि इस अनुष्ठान या इस अनुष्ठान के तात्पर्य को हमारे वेदपंथी समाज ने कितने बड़े व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। हमने जो तुलनामूलक आलोचना की है—उससे इस व्यापकता के समझने में सुविधा होगी। सुविधा होने के ख्याल से ही हमने ईसाई यज्ञके सम्बन्ध में इतनी बातें कही हैं, नहीं तो ईसाई यज्ञ का ज़िक्र उठाने की आवश्यकता ही क्या थी। ईसाइयों में जिसका नाम eucharist है, वेदपंथियों में उसी का नाम इड़ा है। इस इड़ा का अर्थ समझना होगा, संकीर्ण अर्थ में तो इस इड़ा के

भक्षण से यज्ञ की समाप्ति होती है किंतु व्यापक अर्थ में इस इड़ा के भक्षण में मानवजीवन की सम्पूर्णता है। मनुष्य का गार्हस्थ जीवन, सामाजिक जीवन यहां तक कि आधिभौतिक आध्यात्मिक, पार्थिव, अपार्थिव, पारमार्थिक सब जीवनों की इस इड़ा के भक्षण से सम्पूर्णता समाप्ति और सार्थकता है। वही हमारा religion है और यही हमारा ethics है। इस इड़ा भक्षण के अर्थ और तात्पर्य को समझा कर हम यह बात निकालना चाहते हैं कि वेदपंथी समाज की नींव कहां है, उसकी जड़ कहां है। सिर्फ़ एक बार और आपके सामने उपस्थित होकर हम इस परम तत्त्व को समझाने की कोशिश करेंगे। आप सुनने के लिए तयार रहें—इस समय हमारा इतना ही अनुरोध है।